घनानन्द

भारतीय साहित्य के निर्माता

घनानन्द

लेखक
लल्लन राय

साहित्य अकादेमी

Ghananand : A monograp SAHITYA AKADEMI he Hindi poet. Sahitya Akademi, New Delhi (19 REVISED PRICE Rs. 15.00

प्रथम संस्करण : 1983
द्वितीय संस्करण : 1991

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय :
रवीन्द्र भवन, 35, फीरोजशाह रोड, नयी दिल्ली 110001

विक्रय विभाग : 'स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110001

क्षेत्रीय कार्यालय :
जीवन तारा भवन, 23A/44X, डायमन्ड हारबार रोड, कलकत्ता – 70005
29, एल्डाम्स रोड, तेनामपेट, मद्रास – 600018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई – 400014

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

मुद्रक
यूनिक कलर कार्टन
A 28/2, मायापुरी फेस–I,
नयी दिल्ली 110064

घनानन्द के मर्मी व्याख्याता
स्वर्गीय आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र
की स्मृति को सादर

अनुक्रम

१. युग-वृत्त और युगीन काव्य-प्रवृत्ति

घनानन्द की कविता को समुचित रूप से समझने के लिए उनके युग की सामान्य पृष्ठभूमि और तत्कालीन काव्य की मुख्य प्रवृत्ति पर संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक है। तभी हम यह जान सकेंगे कि वे अपने युग में कितने ऊपर या नीचे हैं, अर्थात् युगीन धारा में उन्होंने अपने को मिला दिया है या अपनी कोई अलग पहचान बनाई है। युग-संदर्भ में देखें तो घनानन्द रीति काल के अन्तर्गत आते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास का यह काल सन् १६५० से १८५० ई० तक, लगभग दो सौ वर्षों का माना गया है। राजनीतिक दृष्टि से इस काल के आरम्भ तक मुगल साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँचकर निरंतर ह्रास की ओर उन्मुख हुआ है। शाहजहाँ की बीमारी और उसकी मृत्यु की अफवाह के कारण १६५८ ई० में उसके पुत्रों के मध्य सत्ता के लिए संघर्ष का आरम्भ, इस वैभवशाली शासन के पतन के आरम्भ का भी कारण बना। बड़े भाई दाराशिकोह की हत्या कर औरंगजेब ने शासन की बागडोर संभाली। अपनी धार्मिक असहिष्णुता और कट्टर-पंथी नीतियों के कारण वह अधिकांश हिन्दू राजाओं और जागीरदारों का विश्वास खो बैठा। उसका पर्याप्त समय धार्मिक-राजनीतिक उपद्रवों के दमन में ही बीता। वह विस्तृत मुगल साम्राज्य को सुव्यवस्थित और सुशासित रखने में असफल रहा। पुत्रों के प्रति अपने कड़े रुख के कारण वह उन्हें योग्य शासक नहीं बना पाया। फलस्वरूप उसके बाद मुगल साम्राज्य लगातार क्षीण होता गया।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद १७०७ ई० में उसके पुत्रों के बीच भी सत्ता-प्राप्ति के लिए संघर्ष हुआ। उसके दूसरे पुत्र शाहआलम को राजगद्दी मिली, लेकिन वह अधिक समय तक जीवित न रह सका। सन् १७१२ ई० से लगभग ६०-७० वर्षों तक मुगल शासन निरंतर अस्थिरता की ओर बढ़ता गया। यहाँ तक कि उसका प्रभाव केवल दिल्ली और आगरा तक ही सीमित रह गया। इस बीच जितने भी मुगल शासक आए, वे अत्यन्त अल्पकाल के लिए गद्दी पर बैठे। जिन्हें कुछ अधिक समय मिला भी वे शासन को सुव्यवस्थित करने की अपेक्षा विलासिता में ही अधिक डूबे रहे। मज़बूत केन्द्रीय सत्ता की पकड़ के अभाव में अनेक हिन्दू और मुसलमान राजाओं, जागीरदारों आदि ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। लेकिन अपनी इस स्वतंत्रता का उपभोग उन्होंने विलासिता में डूबकर किया। अपने विवेच्य कवि घनानन्द का रचनाकाल प्रायः यही समय रहा है। एक विलासी शासक मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार में भी उन्होंने कुछ समय तक काम

किया था। १७३८ ई० में नादिरशाह के आक्रमण और १७५७ तथा १७६१ ई० के अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के भी वे प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं। घनानन्द के सम-सामयिक और प्रशंसक महात्मा चाचा हित वृन्दावनदास ने तत्कालीन अव्यवस्था मे खिन्न होकर मुहम्मदशाह और उसके अमीर-उमरावों के विषय में लिखा था :

वेस्या मदपान करि छकि गए अमीर जेते
　　रजतम की धार काढ़ी बूढ़े को बिलोकियै।
दिल्ली भई बिल्ली कटैला कुत्ता देखि डरी
　　भूल्यौ मुहम्मदसाह पहिले, अब काह ढोंकियै।
बाबर हिमायुँ को चलाऊ अब बंस भयौ
　　ताको अब फैल्यौ सोक परजा करम ठोकियै ।।

—घनआनन्द ग्रन्थावली पृ० ६०-११

इससे स्पष्ट है कि मुहम्मदशाह के समय तक मुगल वंश और उसका शासन पतन की इस सीमा तक पहुँच चुका था कि वह लुटेरे आक्रमणकारियों से भी प्रजा की रक्षा में पूरी तरह असमर्थ था। राजनीतिक दृष्टि से पूरे रीतिकाल में प्राय: यही स्थिति मिलती है।

एक बार मुगल शासन की पूर्ण प्रतिष्ठा के बाद, हिन्दू राजाओं को अपनी खोई हुई शक्ति फिर से प्राप्त करने की इच्छा या आकांक्षा शेष नहीं रह गई थी। शिवाजी आदि कुछ इने-गिने राजाओं ने तथा आगे चलकर मराठा पेशवाओं के साथ मिलकर बुन्देलों ने इस ओर प्रयास अवश्य किया, लेकिन इन्हें भी कोई विशेष सफलता नहीं मिली। इसके अतिरिक्त अन्य राजे और सामन्तगण प्राय: हाथ-पर-हाथ रखे बैठे ही रहे। ऐसी निराशा और पराजय की मनोदशा में उन्होंने अपने उपलब्ध साधनों का उपयोग राग-रंग और विलासिता में मग्न होने के लिए किया। विलासिता के अन्य अनेक उपकरणों के साथ ही उन्होंने कला की अन्यान्य विधाओं—नृत्य, संगीत, चित्र, काव्य आदि को भी अपने मनोरंजन का साधन बनाया। उनकी शान-शौकत और प्रतिष्ठा के लिए जिस प्रकार नर्तकी वेश्याएँ, गायक, चित्रकार आदि राजदरबार के आवश्यक अंग हुए, ठीक उसी प्रकार कवि भी। फलस्वरूप इस काल में बड़ी तेजी के साथ कवि-वर्ग राज्याश्रयों की ओर उन्मुख हुआ। रीतिकाल के प्राय: सभी कवि राजकवि बने। राज-सभा में बड़प्पन की प्राप्ति ही उनके लिए परम उद्देश्य बन गया। इस ह्रासोन्मुख राजनीतिक-सामाजिक वातावरण में राजदरबार विलासिता के प्रमुख अड्डे बन गए। सेना, सुरक्षा, प्रशासन के उपकरणों से हीन इन राजदरबारों में शृंगारिकता के लिए खुला अवकाश था। फलस्वरूप इस काल के काव्य में भी शृंगार को ही प्रमुखता मिली।

राजनीतिक गिरावट के साथ ही इस युग का समाज भी घोर अधःपतन से ग्रस्त था। चौदहवीं शती के आस-पास पतनोन्मुख भारतीय राजनीतिक-सामाजिक जीवन एक विदेशी सांस्कृतिक-सामाजिक विशेषताओं के मेल से कुछ शताब्दियों के लिए उत्थान की दिशा में गतिशील हुआ था। लेकिन सत्रहवीं शती के अन्त तक उस मिश्रण के गतिशील तत्व लुप्त होने लगे थे। वस्तुतः सामंती सामाजिक संरचना का यह काल ह्रास-ग्रस्तता की उस सीमा तक पहुँच चुका था, जहाँ उसके विकास की सारी संभावनाएँ चुक गई थीं। ऐसे ह्रासग्रस्त काल में राजा, राजन्य वर्ग तथा अन्यान्य सम्पत्तिशाली लोगों के अंतर्गत केवल ऊपरी आचार-विचार, शान-शौकत और रीति-नीति ही प्रमुख हो जाते हैं—जिनके प्रति विपन्न और साधारण जनता में कोई रुचि नहीं रह जाती। ऐसे विषमताग्रस्त समाज में साहित्य एवं अन्यान्य कलाएँ वैभवशाली अभिजात वर्ग के इर्द-गिर्द सिमट कर केवल कलागत बाह्य रीति-नीति को ही महत्व देने लगती हैं। वे व्यापक लोक-जीवन और उसकी वास्तविक आशा-आकांक्षा से शून्य होकर रूढ़िबद्ध ऊपरी ढाँचे को ही अधिक महत्वपूर्ण मान लेती हैं। रीतिकालीन अन्यान्य कलाओं में इस तथ्य को आसानी से देखा जा सकता है। तत्कालीन काव्य तो इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

रीतिकालीन काव्य जिस ह्रास ग्रस्त सामंती समाज की देन था, उसमें शृंगार प्रधान साहित्य के लिए ही अधिक अवकाश था। विलासपूर्ण शृंगारिकता तत्कालीन दरबारी वातावरण की देन थी। अपनी शृंगारिक वृत्ति की अभिव्यक्ति के लिए इस काल के अधिकांश कवियों ने संस्कृत के पिछले खेवे के ह्रासग्रस्त शृंगारिक साहित्य से भी प्रेरणा ग्रहण की। इसके साथ विभिन्न काव्यशास्त्रीय स्थितियों के सम्पादन के लिए इन कवियों ने जिन काव्य शास्त्रीय ग्रंथों को आधार बनाया, उनमें भी घोर शृंगार को ही प्रमुखता मिली थी। रस, नायिका भेद, अलंकार, छन्द, नख-शिख वर्णन आदि की परिपाटी का विवेचन करने वाले ये पूर्ववर्ती ग्रंथ संस्कृत साहित्य के ह्रासोन्मुख शृंगारिक उदाहरणों से भरपूर थे। पूर्ववर्ती कृष्ण भक्ति से सम्बद्ध हिन्दी काव्य में भी इस लौकिक शृंगार के समावेश की पर्याप्त गुंजाइश थी। इस प्रकार युगीन स्थिति-परिस्थिति के साथ ही पूर्ववर्ती परम्परा ने भी रीतिकालीन शृंगारिकता को बढ़ावा दिया। यह सही है कि शृंगार के साथ ही इस काल में भक्ति एवं वीर रस का भी पर्याप्त साहित्य लिखा गया। लेकिन उसमें भी हमें ताजगी एवं जीवंतता के स्थान पर बाह्य आचार एवं रीति की ही प्रधानता मिलती है। भक्ति के क्षेत्र में तुलसी और सूर की ताजगी, कबीर की जीवन्तता का यहाँ सर्वथा अभाव है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस काल का अभिजात वर्ग जिस प्रकार जीवन में बाह्याचार और रीतियों को प्रमुखता देने लगा था, ठीक उसी प्रकार उसकी छाया-माया में पलने वाले कवि भी अपने काव्य में बाह्याचारों को ही प्रधानता देने लगे। फलस्वरूप इस काल का

समूचा साहित्य रीति प्रधान हो गया।

हमारे विवेच्य कवि घनानन्द भी इसी युग की देन थे। अपने युग के सामाजिक विधि-निषेधों के प्रति विद्रोह के साथ ही इन्होंने काव्यगत रीतियों का भी किंचित विरोध अवश्य किया। लेकिन सामंती मानवी-सामाजिक सम्बन्धों की रूढ़िबद्ध नैतिकता से वे अपने को पूरी तरह मुक्त नहीं कर पाए। युगीन प्रवृत्ति के प्रभाव-वश इन्होंने भी शृंगार को ही अपने काव्य का विषय बनाया। युग की सीमाओं से किंचित बँधकर भी घनानन्द ने शृंगार के रीतिबद्ध स्वरूप की रीतिबद्ध ढंग से अभिव्यक्ति नहीं की है। अपने स्वच्छन्द व्यक्तित्व और निजी परिवेश के कारण इनमें तत्कालीन सामाजिक एवं काव्यगत रीतियों से मुक्ति का प्रयास दिखाई देता है। इसलिए इन्हें रीतिमुक्त कवि की संज्ञा दी गई है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल के शृंगारिक कवियों को, उनकी रचना-प्रकृति के आधार पर, तीन वर्गों में विभक्त किया है—१. रीतिबद्ध, २. रीति सिद्ध और ३. रीति मुक्त। इनमें पहले वर्ग के अन्तर्गत चिन्तामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम, पद्माकर आदि अधिकांश रीतिकालीन कवि आते हैं। ये सभी पूर्णतः रीतिबद्ध कवि हैं। इन्होंने काव्यशास्त्र की बँधी-बँधाई परिपाटी पर केवल काव्य-रचना ही नहीं की है, वरन् शास्त्र-स्थिति-सम्पादन का भी प्रयास किया है। अतः इन्हें रीतिबद्ध के साथ ही लक्षणकार या लक्षणबद्ध रचनाकार की भी संज्ञा दी जा सकती है। दूसरे वर्ग के कवि भी एक प्रकार से रीतिबद्ध ही हैं, लेकिन उन्होंने लक्षण ग्रंथ न लिखकर केवल लक्ष्य ग्रंथ ही लिखा है। इसके अन्तर्गत बिहारी, रसनिधि आदि कवि आते हैं। कवियों की दृष्टि से इस प्रकार के रचनाकारों का एक अलग वर्ग नहीं बन पाता। हाँ, रचनाओं की दृष्टि से रीतिकाल में लिखी गई सभी सतसइयाँ इस श्रेणी में आ जाती हैं। इस प्रकार की रचनाएँ अपने बाह्याकार में तो रीति-निरूपक नहीं लगतीं, लेकिन बनावट-बुनावट के साथ ही इनकी मूलचेतना तत्कालीन काव्य-रीतियों से ही निर्मित है। इसीलिए इनके रचयिताओं को रीति सिद्ध कवि कहा गया है।

तीसरे वर्ग के अन्तर्गत रीतिमुक्त कवि आते हैं, जिनमें घनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन कवियों ने रस, अलंकार नायिका भेद, नख-शिख वर्णन की बँधी-बँधाई परिपाटी का परित्याग कर मुक्त भाव से शृंगार काव्य रचा है। इन्होंने भाव एवं शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में रीति के बाह्य बंधनों को केवल अस्वीकार ही नहीं किया है, वरन् स्थान-स्थान पर उसका विरोध भी किया है। इस सम्बन्ध में रीतिमुक्त ठाकुर का स्पष्ट कहना है:

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।

सीखि लीनों कल्पबृक्ष कामधेनु चिन्तामनि,
सीखि लीनो मेर.औ कुबेर गिरि आनो है
'ठाकुर' कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहिं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कबित्त कीबो खेल करि जानो है॥

इस कवित्त में ठाकुर ने रीतिबद्ध कवियों की रचना-प्रकृति का ही उद्घाटन नहीं किया है, वरन् उनकी रूढ़िवादी मनोवृत्ति का भी उपहास किया है। रीतिबद्ध कवियों ने कवि-वर्णन-परिपाटी में गिनाई गई बातों को सीखकर काव्य-रचना की थी। इसलिए उनका काव्य काव्य-शास्त्र के चौखटे में आवद्ध हो गया। कवि-शिक्षा ग्रहण कर लोग कवि बनने लगे थे और उन्हें राजसभा में आदर भी मिलने लगा था। इस प्रकार कवि-कर्म 'खेल' या क्रीड़ा-कौशल की तरह अभ्यास-सिद्ध कार्य बन गया था। फलस्वरूप अन्तःप्रेरणा और आत्मानुभूति के समावेश के लिए उसमें बहुत कम अवकाश रह गया था। रीतिबद्ध कवियों की इस मनोवृत्ति पर कटाक्ष करते हुए घनानन्द ने लिखा है :

यौं घनआनँद छावत भावत जान सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोहिं तो मेरे कबित्त बनावत॥
—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० ७५/२२८

इस सवैये में घनानन्द ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया है कि 'लोग अर्थात् रीति कवि लगकर, जोड़-तोड़कर कविता बनाते हैं, किन्तु मैंने अपनी कविता का नहीं, वरन मेरी कविता ने ही मेरा निर्माण किया है।' तात्पर्य यह कि घनानन्द का काव्य उनकी जीवनानुभूति का सहज-स्वच्छन्द प्रकाशन है। उसका मूल स्रोत सुजान और उनका अपना पारस्परिक सम्बन्ध है। वस्तुतः घनानन्द ने अपने काव्य में आदि से अंत तक अपने और सुजान के सम्बन्धों को ही दुहराया है। इसलिए वे अपने युग के अधिकांश कवियों से अलग दिखाई देते हैं। इस तथ्य को लक्ष्य कर घनानन्द के प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने लिखा है :

जग की कबिताई के धोखें रहैं, ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी।
समझै कबिता घनआनँद की, हिय-आँखिन नेह की पीर तकी॥

'जग की कविता' से यहाँ रीतिबद्ध साधारण शृंगारिक रचना से तात्पर्य है, जिससे घनानन्द की कविता को भिन्न बताया गया है। यह भिन्नता 'हिय आँखिन नेह की पीर तकी' के माध्यम से व्यंजित हुई है। इसका अभिप्राय है कि घनानन्द की कविता को वही समझ सकता है, जो हृदय की आँखों से प्रेम की पीड़ा को

देखने की सामर्थ्य रखता हो। 'हृदय की आँखों' का तात्पर्य है आत्मानुभव। यहाँ ब्रजनाथ ने आत्मानुभूति के तत्व के आधार पर घनानन्द को अपने युग के अन्य कवियों से पृथक सिद्ध किया है। लेकिन यह भिन्नता केवल आत्मानुभूति के स्तर तक ही सीमित न रहकर भाव विधायक कल्पना, भाषा एवं शिल्प की योजना में भी आसानी से देखी जा सकती है। घनानन्द के अपने निजी अनुभव-जगत् को समझने के लिए हमें उनके जीवन-वृत्त की ओर दृष्टिपात करना पड़ेगा।

२. जीवन-वृत्त एवं रचनाएँ

घनानन्द, आनन्दघन और आनन्द को लेकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में पर्याप्त विवाद रहा है। इस तीनों नामों से सम्बद्ध रचनाओं और तथ्यों को देखने से पता चलता है कि इस नाम के एकाधिक व्यक्ति हुए हैं। हमें इस विवाद में न पड़कर अपने विवेच्य कवि की प्रामाणिक रचनाओं को ही अध्ययन का आधार बनाना है। हमारे लिए यह भी आवश्यक नहीं है कि कवि के प्रामाणिक जीवन-वृत्त—जन्म-तिथि, जन्म-स्थान आदि के सम्बन्ध में माथा-पच्ची करें। फिर भी किसी कवि या रचयिता की रचना को समुचित रूप से समझने के लिए उसके जीवन की प्रमुख घटनाओं की जानकारी कभी-कभी बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। घनानन्द रीतिकाल के अन्तर्गत ऐसे कवि हुए हैं, जिनका जीवन उनके काव्य से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। यहाँ संक्षेप में उनके जीवन पर केवल इस दृष्टि से विचार किया जाएगा, जिससे कि उनकी काव्य-प्रेरणा के मूल स्रोतों को पहचाना जा सके।

अन्य अधिकांश रीतिकालीन कवियों की भाँति अपने जीवन के आरम्भ में घनानन्द का सम्बन्ध भी राजदरबार से था। वे एक विलासी मुगल सम्राट, मुहम्मदशाह 'रंगीले' के दरबार में रहते थे—एक कवि के रूप में नहीं, वरन् एक प्रतिष्ठित कर्मचारी के रूप में। वे मीर मुंशी थे या वजीर—इस संबंध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि राजदरबार में उनकी पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अन्य दरबारियों की उनके प्रति ईर्ष्या से मिलता है। राजदरबार में रहते हुए वे अपनी कवित्व शक्ति के लिए नहीं, वरन् गायन कला में निपुणता के लिए प्रसिद्ध थे। दरबार की एक सुजान नामक प्रतिष्ठित वेश्या से इनका प्रेम था। सुजान अपने रूप और गुण के कारण बादशाह के भी पर्याप्त निकट थी। बादशाह की कृपा और सुजान के प्रेम के कारण अन्य दरबारियों की ईर्ष्या ने द्वेष का रूप धारण कर लिया। उन सब के सम्मिलित कुचक्र के कारण घनानन्द को राजदरबार से निष्कासित होना पड़ा।

राजदरबार से घनानन्द के निष्कासन के विषय में एक किंवदंती प्रचलित है। षड्यंत्र की भावना से प्रेरित दरबारियों ने बादशाह को बताया कि घनानन्द गाते बहुत अच्छा है। उन्हें यह अच्छी तरह मालूम था कि ये अपनी कला को दरबारी नहीं बनाना चाहते। अतः बादशाह के अनुरोध पर भी घनानन्द ने गाया नहीं। जब दरबारियों ने बताया कि सुजान के कहने पर ये अवश्य गाएँगे

तो उसे भी दरबार में बुलाया गया। उसके अनुरोध पर घनानन्द ने इतना तन्मय होकर गाया कि वे राजदरबार के सामान्य शिष्टाचार को भी भूल गए। जिस समय उनका गाना समाप्त हुआ, उस समय उनका मुख सुजान की ओर और पीठ बादशाह की ओर थी। इस अशिष्टता के कारण दरबारियों का षड्यंत्र सफल हुआ। फलस्वरूप इन्हें राजदरबार से निकाल दिया गया। दरबार से चलते समय घनानन्द ने सुजान से भी साथ चलने को कहा, लेकिन उसने साफ इनकार कर दिया। इससे उनके मन को गहरी ठेस लगी। काफी समय तक इधर-उधर भटकते हुए ये सुजान के विरह में विह्वल भाव से काव्य-रचना करते रहे। 'सुजान हित' इस काल की इनकी महत्वपूर्ण रचना है। अंत में लौकिक प्रेम से विरक्त होकर ये वृन्दावन चले गए और वहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित होकर सखी भाव के उपासक बन गए। किंवदन्तियों के अनुसार ये नादिरशाह के आक्रमण (१७३८ ई०) में मारे गए। लेकिन आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने विस्तार से यह सिद्ध किया है कि इनकी मृत्यु अहमदशाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण (१७६१ ई०) में मथुरा में हुई। उन्हीं के अनुसार घनानन्द की जन्म-तिथि १६७३-७४ के आस-पास रही होगी। इस तिथि को इनके जीवन से सम्बद्ध अन्य तथ्यों के प्रकाश में १०-१५ वर्ष आगे-पीछे ले जाया जा सकता है।

उपर्युक्त विवरण से कई तथ्य हमारे सामने उद्घाटित होते हैं। पहला तो यह कि घनानन्द लौकिक प्रेम में दीक्षित होकर भगवत् प्रेम की ओर उन्मुख हुए थे। दूसरा यह कि लौकिक प्रेम-पात्र सुजान ही इनके काव्य की मूल प्रेरक शक्ति रही है। तीसरा यह कि इन्हें जीवन में एकतरफा प्रेम मिला था, जो इनके काव्य में सर्वत्र देखा जा सकता है। चौथा यह कि अपने जीवन के आरंभ में ये एक अच्छे गायक थे, लेकिन सुजान के वियोग के बाद काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए। फलस्वरूप इनके संयोग चित्रण में भी वियोग की एक काली छाया मँडराती हुई दिखाई देती है। पाँचवाँ यह कि हिन्दू कायस्थ जाति के होते हुए भी इन्होंने मुसलमान वेश्या से प्रेम कर अपनी स्वच्छन्द प्रकृति का परिचय दिया था। छठा यह कि सामाजिक विधि-निषेधों का उल्लंघन इन्हें काव्य-रीतियों के उल्लंघन की ओर उन्मुख करता है।

यहाँ यह विशेष रूप से ध्यान देने की बात है कि घनानन्द अपने समय के पर्याप्त विवादास्पद व्यक्ति रहे हैं। जहाँ एक ओर ब्रजनाथ, हितवृन्दावन दास आदि जैसे बहुत सारे उनके प्रशंसक रहे हैं, वहीं दूसरी ओर उनके निन्दक भी रहे हैं। राजदरबार में दरबारियों की ईर्ष्या और बादशाह के कोपभाजन बनने से लेकर उनके कवि एवं भक्त जीवन में भी तरह-तरह के आक्षेप किए गए हैं। निन्दा की दृष्टि से घनानन्द से सम्बद्ध एक अज्ञातनामा कवि का भड़ौवा मिला है, जो लगभग १७५५ ई० के 'यस कवित्त' नामक संग्रह में संकलित है। इसमें

घनानन्द के कायस्थ होने के साथ ही उनके ब्रज में आने और स्थिर अपयश धारण करने का अत्यन्त निन्दापूर्ण वर्णन मिलता है। इसके माध्यम से घनानन्द के जीवन से सम्बद्ध बहुत से तथ्यों की भी पुष्टि होती है। इसके कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं :

१. 'कबहूँक खुजावत मैं छुवती तिहि आनंद कों तब हौं सरती।

वह ईस कहूँ घनआनंद को जौ **सुजान-इजार की जूँ करतौ**।।'

२. 'करै गुरनिन्दा वह **हुरकनी कौ बंदा महा**
निरघिनी गन्दा खात पानीर औ नान है।
बैन कों चुरावै ताको मजमून लावै कूर
कबिता बनावै गावै रिजौली सी तान है।

पाप को भवन करै अगम-गमन ऐसो
मुड़िया अनन्दघन जानत जहान है।।'

३. 'डफरी बजावै डौम ढाढ़ी सम गावै, **काहू**
तुरकै **रिझावै** तब पावै झूठो नाम है।
हुरकिनी सुजान तुरकिनी को सेवक है
तजि रामनाम वाकौं पूजै काम धाम है

पीवै भंगकुण्डा संग राखै···गुंडा···
भसुण्डा आनंदघन मुण्डा सरनाम है।'

४. 'मुदित अनन्दघन कहत विधाता सों यौं
खाल को आसन दीजौ गारी मोहि गावैगी।
मो मुख को पीकदान करियौ सुजान प्यारी
हुरकिनी तुरकिनी थुक्कै सुख पावैगी।
धोती को इजार दुपटी को पेसवाज और
देहुगे रुमाल ताकौ पूछना बनावैगी।
पगिया-पायंदाज कीजियै गरीब निवाज
भरि गएँ मोमन पलिंग पर आवैगी।।'

—घनआनन्द, ग्रंथावली, भूमिका, पृष्ठ ६६-६७

इस भड़ौवे के रचयिता ने घनानन्द की निन्दा के बहाने बहुत-से प्रामाणिक तथ्य हमारे सामने उपस्थित कर दिए हैं। सुजान नामक मुसलमान वेश्या से प्रेम, किसी मुसलमान का दरबारी होना, दूसरों की वाणी चुराकर कविता बनाना और उसे गाना, ब्रजभूमि में कहीं बाहर से आकर भक्त बनना आदि घनानन्द से

सम्बद्ध किंवदंतियों को ये छंद पूरी तरह प्रामाणिक सिद्ध करते हैं। वे जिस प्रकार राजदरबार की प्रतिष्ठा से दरबारियों के द्वेष के भाजन बने, ठीक उसी प्रकार अपनी कवित्व शक्ति और प्रगाढ़ भक्ति भावना के कारण अपने प्रतिद्वन्द्वियों की ईर्ष्या के भी पात्र बने थे।

निन्दकों और ईर्ष्यालुओं के साथ ही घनानन्द के प्रशंसक भी कम नहीं थे। इनकी काव्य-प्रतिभा से चमत्कृत होकर ब्रजनाथ की प्रशंसा इसका स्पष्ट प्रमाण है। घनानन्द के निन्दकों को लक्ष्य करके ब्रजनाथ ने अपने रोष को इस प्रकार प्रकट किया है :

कोटि विषै करि ओट महा, नहिं नेह की चोटहि जो पहचानै।
बात के गूढ़ न भेदन जानत, मूढ़ तऊ हठि बादन ठानै।
चाह प्रबाह अथाह परे नहिं, आप ही आप बिचच्छन मानै।
पूंछ विषान बिना पसु जो, सु कहा घनआनंद बानी बखानै।।

—घनआनन्द कबित्त, पृष्ठ २७४/६

चाचा हित वृन्दावन दास ने अपनी 'हरिकला वेलि' (रचनाकाल १७६१ ई०) में घनानन्द को अत्यंत सम्मान के साथ इस प्रकार स्मरण किया है :

आनंदघन को ख्याल इक गायौ खुलि गए नैन।
सुनत महा बिह्वल भयौ मन नहिं पायौ चैन।।
ऐसे हू हरि-संत-जन जमननि मारे आइ।
यह अति देख हियो भयौ लीनौ सोच दवाइ।।

—घनआनन्द ग्रन्थावली, भूमिका, पृष्ठ ५६

घनानन्द की निर्मम हत्या के प्रत्यक्षदर्शी इस महात्मा ने उनके शव पर आँसू बहाते हुए शोकातिरेक में विह्वल होकर लिखा है :

बिरह सौं तायौ तन निबाह्यौ बन साँचौ पन,
धन्य आनंदघन मुख गाई सोई करी है।

गाढ़ौ बृज उपासी जिन देह अंत पूरी पारी,
रज की अभिलाप सो तहाँ ही देह धरी है।
बृन्दावन हित रूप तुमहू हरि उड़ाई धूरि,
ऐ पै साँची निष्ठा जन ही की लखि परी है।।

—घनआनन्द, ग्रन्थावली भूमिका, ष्ठ ६०

यहाँ बृन्दावन दास ने भक्त कवि के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की

है। विरह की साक्षात मूर्ति घनानन्द ने अपनी कथनी और करनी, अर्थात् अपने जीवन और काव्य में एकात्म्य स्थापित किया था—जिसे 'मुख गाई सोई करी है' के माध्यम से संकेतित किया गया है। 'राधाकृष्ण दास' ग्रंथावली में एक विवरण आया है। घनानन्द से सम्बद्ध एक किंवदन्ती पर आधारित इस विवरण में कहा गया है कि मथुरा में कत्लेआम के समय घनानन्द ने सैनिकों से कहा था कि मुझे धीरे-धीरे देर तक तलवार की घाव दो। तलवार की घाव के साथ ब्रज की धूलि में लेटते हुए इन्होंने प्राण-त्याग किया। उपर्युक्त कवित्त के तीसरे बंद में इस तथ्य की ओर भी संकेत हुआ है। 'ऐसे हू हरि-संत-जन मारे जमनन आइ'—के उल्लेख द्वारा तो बृन्दावन दास जी ने घनानन्द की मृत्यु के कारण को एकदम निर्विवाद बना दिया है।

अपने व्यक्तित्व की भाँति ही घनानंद का कृतित्व भी रीतिकालीन अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक व्यापक और गहरी भावभूमि पर प्रतिष्ठित है। छन्द-विधान की दृष्टि से भी ये अपने समकालीन कवियों से पर्याप्त भिन्न हैं। कबित्त, सवैया, दोहा, सोरठा, अरल्ल, शोभन, त्रिभंगी, ताटंक, निसानी, सुमेरु, घनाक्षरी, चौपाई, प्लवंग, छप्पय, विष्णुपद आदि विभिन्न छन्दों के साथ ही इन्होंने पद शैली में राग-रागिनियों पर आधारित बहुत बड़ी संख्या में गीत भी लिखे हैं। इनके गीत सूर, तुलसी, कबीर, मीरा आदि के गीतों से पर्याप्त भिन्न और शास्त्रीय संगीत की मर्यादा से पूरी तरह मर्यादित हैं। अधिकांशतः चार-चार पंक्तियों में आबद्ध ये गीत ताल और सुर के अद्भुत आरोह-अवरोह के माध्यम से घनानन्द की संगीत मर्मज्ञता को प्रामाणित करते हैं। एक विशिष्ट संगीतज्ञ होने के नाते इनके परम्परागत छन्दों—विशेषतः कवित्त-सवैयों में भी संगीतात्मकता का सुन्दर विधान मिलता है। घनानन्द ग्रंथावली में संकलित रचनाओं को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि भाव-वैविध्य के साथ ही शैली-वैविध्य का भी सुन्दर विधान घनानन्द ने किया है। भाषा की दृष्टि से ये मुख्यतः ब्रजभाषा के कवि हैं। लेकिन पूर्वी हिन्दी, अवधी, पंजाबी, राजस्थानी आदि के साथ ही अरबी-फारसी मिश्रित भाषा के प्रयोग में भी इन्होंने अपनी निपुणता का परिचय दिया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'घनानन्द ग्रंथावली' के अन्तर्गत इनकी निम्नलिखित रचनाओं को स्थान दिया है :

१. सुजानहित, २. कृपा कन्द निबंध, ३. वियोगवेलि, ४. इश्कलता, ५. यमुना-यश, ६. प्रीतिपावस, ७. प्रेमपत्रिका, ८. प्रेम सरोवर, ९. ब्रजबिलास, १०. सरस बसंत, ११. अनुभव-चंद्रिका, १२. रंग बधाई, १३. प्रेम-पद्धति, १४. वृषभानुपुर सुषमा, १५. गोकुल गीत, १६. नाम माधुरी, १७. गिरि पूजन, १८. विचार सार, १९. दान घटा, २०. भावना प्रकाश, २१. कृष्ण कौमुदी, २२. धाम चमत्कार, २३. प्रिया प्रसाद, २४. बृन्दावन मुद्रा, २५.

ब्रज स्वरूप, २६. गोकुल चरित्र, २७. प्रेम पहेली, २८. रसना यश, २९. गोकुल विनोद, ३०. ब्रज प्रसाद, ३१. मुरलिका मोद, ३२. मनोरथ मंजरी, ३३. ब्रज व्यवहार, ३४. गिरिगाथा, ३५. ब्रज वर्णन, ३६. छंदाष्टक, ३७. त्रिभंगी छंद, ३८. कवित्त संग्रह, ३९. स्फुट, ४०. पदावली और ४१. परमहंस वंशावली।

वस्तुतः ऊपर गिनायी गई रचनाओं में से अधिकांश स्वतन्त्र रचना न होकर विभिन्न छन्दों में भिन्न-भिन्न विषयों के संक्षिप्त वर्णन हैं। जैसे—'प्रेम सरोवर' केवल आठ दोहों में वृन्दावन के एक सुन्दर स्थल की झाँकी है। इसी प्रकार 'वियोग वेलि', 'यमुना यश', 'प्रीतिपावस', 'ब्रज विलास', 'सरस वसंत', 'अनुभव-चंद्रिका', 'रंग बधाई', 'प्रेम पहेली', 'रसना यश', छन्दाष्टक', 'त्रिभंगी' आदि दो से लेकर छः पृष्ठों तक की अत्यंत छोटी रचनाएँ हैं। यहाँ एक बात विशेष रूप से विचारणीय है कि इन सभी रचनाओं को निर्विवाद रूप से घनानन्द द्वारा रचित मान लेना कठिन है। उनके विरक्त होने से पूर्व की 'सुजानहित' और विरक्ति से बाद की 'पदावली' सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाएँ है, जो उनके तीन-चौथाई से भी अधिक कृतित्व को समेटे हुए हैं। छोटी रचनाओं में 'प्रेम पत्रिका', 'कृपाकन्द-निबंध', 'प्रेम पद्धति' आदि को भी निर्विवाद रूप से घनानन्द कृत माना जा सकता है। अतः 'घनआनन्द ग्रंथावली' में संकलित लगभग ८० प्रतिशत रचनाएँ निश्चित रूप से प्रामाणिक मानी जा सकती है।

यहाँ इस तथ्य की ओर भी संकेत कर देना आवश्यक है कि घनानन्द की रचानाओं का सबसे प्राचीन संग्रह 'घनआनंद कबित्त' है। इसे उनके समसामयिक एवं मित्र ब्रजनाथ ने बड़े श्रम से तैयार किया था। इसमें लगभग ५०० कवित्त-सवैये रखे गए हैं। 'कृपाकन्द निबंध', 'प्रेम-पत्रिका', 'दान-घटा' आदि छोटी रचनाओं के कवित्त-सवैयों के साथ ही 'सुजानहित' के अधिकांश कवित्त-सवैये भी इसमें आ गए हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का तो यहाँ तक कहना है कि 'घनआनन्द कबित्त' की ही किसी अस्त-व्यस्त प्रति के आधार पर 'सुजानहित' संग्रह तैयार किया गया है। इस सम्बन्ध में वास्तविकता चाहे जो हो, लेकिन यह एक स्पष्ट तथ्य है कि 'घनआनंद कबित्त' में चौबीस ऐसे कवित्त-सवैये हैं, जिन्हें 'घनआनन्द ग्रंथावली' की किसी भी रचना में स्थान नहीं मिला है। अतः ग्रंथावली के अन्तर्गत इन्हें 'प्रकीर्णक' शीर्षक से रखा गया है। अपनी विषय-वस्तु, भाव-भंगिमा, भाषा-शैली आदि सभी दृष्टियों से इन कवित्त-सवैयों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की आशंका की गुंजाइश नहीं है। 'कृपाकन्द निबंध', 'प्रेमपत्रिका', 'दान घटा' आदि के कवित्त-सवैयों का 'घनआनंद कवित्त' में समावेश कवि के भक्त-रूप का भी संकेतक है। इस प्रकार यह संग्रह लौकिक शृंगार और भक्ति-भावना—दोनों का प्रतिनिधित्व करता है। यदि

ग्रंथावली में संगृहीत पदावली को इसके साथ मिला लिया जाए तो विवेच्य कवि का समग्र कृतित्व हमारे सामने आ जाता है। इसके आधार पर उसके काव्य की अन्तर्बाह्य सभी विशेषताओं का समुचित आकलन किया जा सकता है। वैसे घनानन्द की साहित्यिक कीर्ति का प्रमुख स्तम्भ 'सुजानहित' ही है। यह मुख्यतः लौकिक शृंगार की रचना है, जिसमें शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण है। शेष सभी रचनाएँ किसी-न-किसी रूप में कवि की भक्ति-भावना व्यंजित करती हैं।

३. 'लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोहिं तो मेरे कबित्त बनावत'

घनानन्द और अन्य रीतिमुक्त कवि भी रीतिबद्ध लक्षणकार कवियों की भाँति ही तत्कालीन युग चेतना से जुड़े हुए थे। तत्युगीन ह्रासोन्मुख सामंती समाज के मानवी-सामाजिक संबंधों के अंतर्गत रह कर ही इन कवियों की स्वच्छन्दता और मुक्ति की कल्पना को आकार मिला था। घनानन्द के साथ ही अधिकांश रीतिमुक्त कवियों को राजदरबारों का आश्रय ग्रहण करना पड़ा था। यद्यपि कवि के रूप में घनानन्द ने किसी राजदरबार का आश्रय नहीं ग्रहण किया, फिर भी मुहम्मदशाह के दरबार से सम्बद्ध कर्मचारी होने के नाते जाने-अनजाने कुछ दरबारी प्रभाव उन पर अवश्य था। बोधा पन्ना नरेश के आश्रित कवि थे और आलम को बहादुरशाह का आश्रय मिला था। ठाकुर कई राजदरबारों से सम्बद्ध रहे हैं, लेकिन किसी प्रलोभन में अपनी स्वच्छन्दता पर उन्होंने कभी आँच नहीं आने दी। कहा जाता है कि एक बार बांदा नरेश हिम्मतबहादुर ने अपने भरे दरबार में ठाकुर को कुछ कटुवचन कह दिया था। इससे क्रुद्ध होकर ठाकुर ने म्यान से तलवार निकाल लिया था और कहा था :

> 'सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
>   दान जुद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके।
> नीति देनवारे हैं मही के महिपालन को,
>   हिये के बिसुद्ध हैं, सनेही साँचे उरके।
> ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,
>   जालिम दमाद हैं अदानियाँ ससुर के।
> चोजिन के चोजी महा मौजिन के महाराज,
>   हम कविराज हैं, पै चाकर चतुर के ॥'

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३६२।

इन सभी रीतिमुक्त कवियों ने युग की प्रमुख काव्य-प्रवृत्ति शृंगार को ही अपने काव्य का विषय बनाया। युगीन भावधारा से बंध कर भी ये कवि रीति या परम्परा के अंधानुयायी नहीं बने। जहाँ इन्होंने आवश्यक समझा वहाँ रूढ़ परम्परा को—चाहे वह सामाजिक हो या काव्य की—यथाशक्ति तोड़ने का प्रयास किया।

कायस्थ घनानन्द ने सुजान नामक मुसलमान वेश्या से प्रेम किया, जिसके लिए उन्हें राजदरबार की नौकरी से हाथ धोना पड़ा। ब्राह्मण वंश में उत्पन्न बोधा ने सुभान नामक मुसलमान वेश्या को जीवन-संगिनी बनाया। ब्राह्मण आलम शेख नामक मुसलमान रँगरेजिन से प्रेम-विवाह किया। इस प्रकार इन सभी कवियों ने प्रचलित सामाजिक विधि-निषेधों का उल्लंघन करने का साहस दिखाया है। इसके विपरीत चिन्तामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम, पद्माकर आदि सभी रीतिबद्ध कवियों ने सामाजिक विधि-निषेधों के अनुकूल जीवन-यापन किया था। उस समय के दरबारी वातावरण में यह संभव ही नहीं था कि सामाजिक आचार-विचार की उपेक्षा करके कवि-कलाकार या कोई भी व्यक्ति दरबार में रह सके।

यहाँ यह स्मरणीय है कि घनानन्द की स्थिति आपने समशील रीतिमुक्त कवियों से भी पर्याप्त भिन्न थी। बोधा ने अन्तत: सुभान को प्राप्त किया। आलम ने शेख के साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत किया। परन्तु घनानन्द सुजान द्वारा ठुकराए गए। जीवन में इनका प्रेम एकतरफा या विषम सिद्ध हुआ। फलस्वरूप अपने काव्य में भी इन्होंने अनुभयनिष्ठ विषम प्रेम की वेदना को ही विस्तार दिया है। वैसे अन्य रीतिमुक्त कवियों में भी विषम प्रेम की पीड़ा के दर्शन होते हैं, लेकिन रीतिबद्ध कवियों की भाँति ही इनमें उभयनिष्ठ प्रेम का पर्याप्त चित्रण भी मिलता है। इस प्रकार अपने जीवन की भाँति ही अपने काव्य में भी अन्य सभी रीतिकालीन शृंगारिक कवियों से घनानन्द का पार्थक्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

रचना के स्तर पर भी रीतिबद्ध कवियों से घनानन्द का पार्थक्य स्पष्ट है। रीति कवियों में संयोग-वर्णन के अन्तर्गत जो तल्लीनता मिलती है, वह वियोग-वर्णन में नहीं। इसके साथ ही पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रीय परम्परा के आधार पर विभिन्न अलंकारों, नायिकाओं के लक्षणबद्ध स्वरूप प्रस्तुत करने के कारण उनके काव्य में पर्याप्त कृत्रिमता आ गई है। आत्मानुभूति की अपेक्षा शास्त्र स्थिति-सम्पादन को अधिक महत्व देने के कारण उनकी काव्य-दृष्टि प्राय: बाह्यार्थ निरूपण पर ही अधिक रही है। फलस्वरूप संयोग में बाहरी उछल-कूद; वियोग में ताप की ऊपरी नाप-जोख, अतिरंजित कृशता और सौंदर्य-वर्णन में साँचे में ढले-ढलाए प्रभाव शून्य मात्रा बोधक चित्र ही उनमें अधिक मिलते हैं। बाह्य रीतियों के बंधन से अधिक जकड़ा होने के कारण रीतिबद्ध कवियों का काव्य हृदय की विभूति न बनकर अभ्यास-जन्य क्रीड़ा-कौशल बन गया है। इसके विपरीत घनानंद का काव्य वियोग प्रधान है। विषम प्रेम के कारण उनकी वेदना में एक विशेष प्रकार की असहाय और कातर पुकार मिलती है। स्वानुभूति के स्तर पर चित्रित होने के कारण यह विषमता अन्तर्वृत्ति निरूपण की ओर अधिक उन्मुख है। इसके साथ ही इस वेदना का

केन्द्र कोई नायक-नायिका न होकर कवि का आत्म या 'स्व' है, अत: इसके आग्रह-अनुरोध आत्मनिवेदन के रूप में पाठक के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। फलस्वरूप घनानन्द के यहाँ कवि के साथ पाठक का सीधा सम्पर्क होता है, जिसका रीतिबद्ध कवियों में पर्याप्त अभाव है।

वियोग की भाँति ही संयोग-वर्णन में भी रीतिबद्ध कवियों से घनानन्द का पार्थक्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मिलन आदि के प्रसंगों में रीतिकवियों की भाँति इनकी दृष्टि स्थूल चेष्टाओं और कामोत्तेजक अश्लील विवरणों की ओर नहीं गई है। इनके संयोग-वर्णन में भी एक विशेष प्रकार की तल्लीनता और गांभीर्य आद्यन्त बना रहता है। इनका प्रेमी वियोग की भाँति ही संयोग में भी अशांत और व्याकुल बना रहता है। इसलिए घनानन्द के संयोग और वियोग दोनों के चित्रण में एक स्वस्थ आचारनिष्ठता का सन्निवेश हो गया है, जिसका अधिकांश रीतिबद्ध कवियों में अभाव दिखाई देता है।

काव्यशास्त्रीय बन्धनों में जकड़कर रीतिबद्ध कवियों ने प्रेम को भी बहुत कुछ रूढ़िबद्ध बना दिया है। एक निश्चित प्रकार की नायिका तथा निश्चित अलंकार के लक्षणबद्ध स्वरूप के आग्रह के कारण उनके यहाँ प्रेम की तीव्रता ही नहीं मारी गई है, वरन् वह प्राय: अस्वाभाविक भी बन गया है। इसके साथ ही नायक-नायिका के बीच दूती या सखी के रूप में एक मध्यस्थ के विधान द्वारा रीतिबद्ध कवियों ने प्रेम को एक क्रीडापरक व्यापार की कोटि में ला दिया है। वस्तुत: इस प्रकार की मध्यस्थता सामन्ती समाज के मानवी-सामाजिक सम्बन्धों की आचार-व्यवस्था के आग्रह-अनुरोधों पर आधारित थी। मानव-सम्बन्धों के उस दायरे में केवल प्रेमी ही नहीं, युवा पति का भी प्रेमिका या पत्नी से घर-परिवार या अन्य लोगों के सामने मिलना या बात-चीत करना सामाजिक आचार के विरुद्ध था। यह सामाजिक आचार रीति-कवियों के काव्य में एक रूढ़ि बनकर आई है। घनानन्द के साथ ही सभी रीतिमुक्त कवियों ने इस रूढ़ि का उल्लंघन किया है। इनके यहाँ नायक-नायिका के मध्य संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में एक सीधा सम्पर्क है। रीतिमुक्त ठाकुर की नायिका तो दूती को सीधे फटकारते हुए कह उठती है :

'ह्वै हैं नहीं मुरगा जेहि गाँव सखी तेहि गाँव का भोर न ह्वै हैं।'

अर्थात् जहाँ दूती नहीं होगी, वहाँ क्या प्रिय से मिलन ही नहीं होगा? घनानन्द ने भी अपने काव्य में मध्यस्थ के रूप में सखी या दूती का विधान नहीं किया है। इन्होंने प्रेम के मध्य दौत्य-कर्म को अस्वाभाविक मानते हुए विरही की विवशता को इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

पाती मधि छाती छत लिखि न लिखाए जाहिं,
काती लै बिरह घाती कीने जैसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहाँ पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल माल हैं।

नेह भीजी बातैं रसना पै उर-आँच लागें,
जागें घनआनन्द ज्यौं पुंजनि मसाल हैं।

—घनआनन्द कबित्त, ४२

विरह वेदना ने हृदय की जो दुर्दशा कर रखी है, उसमें न प्रिय को पत्र लिखा-लिखाया जा सकता है और न ही दूसरे द्वारा कोई संदेश भी भेजा जा सकता है। घनानन्द ने यदि कहीं दौत्य-कर्म का उल्लेख किया भी है तो उसे अत्यन्त अस्वाभाविक और अप्रत्याशित रूप में ही :

जहाँ ते पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे,
बारे ये बिचारे प्रान पैंड-पैंड पै मनौ।
आतुर न होहु हा हा नेकुँ फेट छोरि बैठौ,
मोहि वा बिसासी को है ब्यौरौ बूझिबौ बनौ।
हाय निरदई को हमारी सुधि कैसे आई,
कौन विधि दीनी पाती दीन जानिकै भनौ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित कचाई पाक्यौ,
ताके गुन-गन घनआनन्द कहा गनौ॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ६६/२६६

यहाँ कवि ने विषम (एकतरफा) प्रेम से उत्पन्न प्रेमी की आशंका, औत्सुक्य, दैन्य आदि के साथ ही एकनिष्ठता का भी बड़े ही स्वाभाविक और मार्मिक ढंग से अंकन किया है। घनानन्द के काव्य में प्रेमी और प्रिय के मध्य किसी तीसरे की मध्यस्थता की व्यवस्था नहीं मिलती। इस दृष्टि से यह कवित्त एक अपवाद है। लेकिन इसमें भी दूत-दूती के विधान के प्रति कवि का उपेक्षा भाव ही प्रगट हुआ है। प्रिय द्वारा भेजे गए दूत को देखकर नायिका को आश्चर्य होता है। वह प्रिय द्वारा लिखे गए पत्र को पढ़कर जानकारी प्राप्त करने की अपेक्षा दूत के मुख से ही वास्तविकता को जानना चाहती है। दूत को विश्वास में लेते हुए कहती है कि 'तुम जहाँ से पधारे हो, मेरे पलक पाँवड़ों पर ही चलकर आए हो। मेरे नेत्रों ने तुम्हारे पग-पग पर अपने प्राण न्यौछावर किए हैं।' यहाँ प्रिय के प्रति अपने प्रेमाधिक्य की व्यंजना के साथ ही दूत के समुचित सत्कार का भाव भी व्यंजित है। नायिका संदेशवाहक के प्रति पूरा सौजन्य प्रकट करते हुए, उससे कुछ देर तक विश्राम

करने का भी निवेदन करती है। वह संदेशवाहक से कहती है कि आप इतनी दूर से चलकर आए हैं तो अभी जाने की जल्दी न करें, थोड़ी देर आराम से बैठें। इससे आपको आराम भी मिल जाएगा और मेरा कुछ काम भी सिद्ध हो जाएगा। मुझे उस विश्वासघाती के सम्बन्ध में बहुत कुछ पूछना है। यहाँ 'ब्यौरौ घनौ' पद में ब्यौरे (हाल-चाल) का आधिक्य तो है ही, उसके उलझनपूर्ण होने का भी संकेत है। इतना निष्ठुर प्रिय, जिसने एक लम्बी अवधि तक कोई खोज-खबर नहीं ली—आज एकाएक इतना उदार कैसे बन गया कि अपने हाथ से पत्र लिखकर दूत द्वारा संदेश भेज रहा है। इससे विरहिणी के मन में दुविधा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अतः सबसे पहले वह यह जानना चाहती है कि 'उस निष्ठुर को मेरी याद कैसे आई ?' यहाँ 'कौन विधि दीनी पाती'—बड़ा ही व्यंजक प्रश्न है। इसके माध्यम से वह जानना चाहती है कि जिस समय उसने पत्र दिया, उस समय क्या कर रहा था, किसके साथ था, मेरी याद उसे किस प्रसंग में आई ? क्या कहकर उसने पत्र दिया ? कोई मौखिक संदेश हो तो उसे भी सुनाएँ। क्योंकि इन्हीं बातों से वास्तविकता का अनुमान किया जा सकता है। प्रिय के वास्तविक चरित्र के प्रति संदेशवाहक को सावधान करते हुए विरहिणी कहती है कि 'वह झूठ की सचाई में छका हुआ अर्थात् अत्यन्त झूठा और प्रेम के कच्चेपन में पूरी तरह परिपक्व है। उसके गुणों (विपरीत लक्षण से अवगुणों) की गणना नहीं की जा सकती।' इस प्रकार प्रिय के कच्चे चिट्ठे को खोलकर वह दूत का विश्वास प्राप्त करना चाहती है, जिससे प्रिय से सम्बद्ध वास्तविकता का सही पता मिल सके। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि प्रिय द्वारा भेजे गए पत्र के प्रति विरहिणी की कोई विशेष दिलचस्पी नहीं है। उसे पढ़ने की उत्सुकता भी उसमें नहीं दिखाई देती। इसके विपरीत रीतिबद्ध कवियों की विरहिणियाँ प्रिय द्वारा भेजे गए पत्रों को अपने जीवन की सबसे अमूल्य निधि के रूप में सँभाल कर रखती हैं। इसके साथ ही खण्डिता आदि के प्रसंगों में मान-मनौवल से लेकर वियोग की अन्यान्य स्थितियों में रीतिबद्ध कवियों ने सखी या दूती को महत्त्वपूर्ण भूमिका में प्रस्तुत किया है।

भाव-विधान के साथ ही घनानन्द ने रूप-विधान या शिल्प की दृष्टि से भी रीतिबद्ध कवियों से अपना पार्थक्य दिखाया है। रीतिबद्ध कवियों ने कवि-वर्णन-परिपाटी के अन्तर्गत स्वीकृत उपमानों के प्रयोग द्वारा भावों को एक प्रकार से जकड़ दिया है। 'सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन'—के माध्यम से ठाकुर ने इस प्रवृत्ति का अत्यन्त कटु प्रतिवाद किया है। केवल विभाव पक्ष के चित्रण में ही नहीं, वरन् भाव पक्ष के चित्रण, अर्थात् विभिन्न भाव-स्थितियों और मनोदशाओं के चित्रण में भी रीतिकवियों ने बँधे-बँधाए उपमानों का ही सहारा अधिक लिया है। जैसे वियोग और संयोग की चरम दशा को उन्होंने 'बिछुरनि मीन की और मिलनि पतंग की'—के आदर्श द्वारा प्रकट किया है। 'वीरो, प्रेम पर मर मिटो !'

यही उनका प्रेमादर्श दिखाई देता है। अर्थात् संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में क्रमशः मछली और पतंग की तरह प्राण त्याग देना ही उनके लिए परमादर्श बन गया था। रीतिमुक्त कवियों ने इसे प्रायः अस्वीकार किया है। ठाकुर ने संयोग और वियोग दोनों के सम्बन्ध में लिखा है :

'कवि ठाकुर आपनी चातुरी सों सबही सब भाँति बखानतु है।
पर बीर मिले बिछुरे की बिथा मिलि कै बिछुरै सोइ जानतु है।'

संयोग और वियोग की मार्मिक स्थितियों को वर्णन-चातुर्य के द्वारा व्यक्त करना ठाकुर की दृष्टि से अस्वाभाविक है। घनानन्द ने तो 'बिछुरनि मीन की और मिलनि पतंग की' के आदर्श पर ही सीधे आक्षेप किया है :

मरिबौ बिसराम गनै वह तो, यह बापुरो मीत तज्यौ तरसै।
वह रूप-छटा न सहारि सकै, यह तेज तवै चितवै बरसै।
घनआनन्द कौन अनोखी दसा, मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरें मिलें मीन पतंग दसा, कहा मो जिय की गति कौं परसै।।

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ७८/२४०

वियोग और संयोग में मीन और पतंग की स्थिति प्रेमी की वास्तविक स्थिति का स्पर्श मात्र भी नहीं कर पाती। क्योंकि मछली प्रिय से वियुक्त होकर मरने में ही विश्राम मानती है, लेकिन प्रेमी प्रिय से वियुक्त होकर भी उसके लिए जीता और तरसता रहता है। पतंग संयोगकाल में प्रिय के सौन्दर्याधिक्य के प्रकाश से अभिभूत होकर अपने प्राणों को न्यौछावर कर देता है, जब कि प्रेमी प्रिय के सौन्दर्य के ताप में तपते हुए उसे देखता और निरन्तर आनन्दाश्रु विगलित करता रहता है। अतः प्रेमी की साहसिकता का उन दोनों में सर्वथा अभाव है। मछली की कायरता और जड़ता का अलग से उद्घाटन करते हुए घनानन्द ने लिखा है :

हीन भये जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै जड़ मीत के पानि परे को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनन्द जीव की जीवनि जान हि जानै।।

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ५/४

मछली कायर है, क्योंकि अपने प्रिय (जल) से वियुक्त होते ही वह प्राण त्याग देती है। उसका मित्र जल भी जड़ है, अतः चेतन प्रिय से उसकी तुलना ही क्या! यहाँ कवि ने चेतन प्रिय की उपेक्षा को धैर्यपूर्वक वहन करने वाले प्रेमी की विषम पीड़ा को व्यक्त करने के लिए उक्त सादृश्य को अनुपयुक्त सिद्ध करते हुए

रीतिबद्धता का विरोध किया है। घनानन्द की रचनाओं में इस प्रकार के विरोध के स्वर स्थान-स्थान पर मिलते हैं।

अधिकांश रीतिकवियों ने प्रेम की विषमता के उद्गार द्वारा ही प्रेम की पराकाष्ठा को व्यक्त किया है। लेकिन घनानन्द ने इस विषमता को सूफियों की, विशेषकर फारसी साहित्य की भाँति आत्मानुभूति के स्तर तक उतारा है। इनके यहाँ विरह निरीहता की निष्क्रिय स्थिति न होकर एक कठिन साधना की स्थिति है, जिसमें विरही एक साधक की तरह आत्मपीड़न में लीन दिखाई देता है :

आसा गुन बाँधि कै भरोसो सिल धरि छाती
पूरे पन-सिन्धु मैं न बूड़त सकाय हौं।
दुख-दव हिय जारि, अंतर उदेग-आँच
रोम रोम त्रासनि निरंतर तचाय हौं।
लाख लाख भाँतिन की बिरह दसानि जानि
साहस सहारि सिर आरे लौं चलाय हौं।
ऐसें घनआनँद गही है टेक मन माँहि
ऐरे निरदयी तोहि दया उपजाय हौं॥

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० ५५/१६६

प्रेम-साधना में यह आत्मपीड़न प्रिय के हृदय में दया उत्पन्न करने के लिए है, उस प्रिय के हृदय में जो कि अत्यन्त निष्ठुर है। 'लाख-लाख भाँति की विरह दशाओं को जानकर उन्हें साहसपूर्वक झेलना' कुछ वैसा ही है, जैसे अनेक साधना पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त कर ईश्वर प्राप्ति का प्रयास। प्रेम और भक्ति—दोनों ही क्षेत्रों के लिए यह फारसी साहित्य की देन है। विषम प्रेम की इस गम्भीरता और साहसिकता का रीतिबद्ध कवियों में सर्वथा अभाव है। संयोग-चित्रण में भी घनानन्द रीति कवियों, यहाँ तक कि रीतिमुक्त काव्यधारा के अन्य कवियों से भी पर्याप्त भिन्न दिखाई देते हैं। इस सम्बन्ध में इनकी स्पष्ट स्थिति है :

अनोखी हिलग दैया, बिछुरैं तौ मिल्यौ चाहै,
मिले हू में मारै जारै खरक बियोग की।

अतः संयोग में भी घनानन्द के यहाँ वियोग की आशंका चैन नहीं लेने देती। इस विशिष्ट स्थिति के लिए उनकी जीवनगत परिस्थिति उत्तरदायी है। इन्हें क्षणिक संयोग के बाद शाश्वत वियोग मिला था। यह परिस्थिति रीतिबद्ध कवियों को नहीं प्राप्त हुई थी और रीतिमुक्त कवियों को पर्याप्त भिन्न रूप में मिली थी। रीतिबद्ध अधिकांश कवि स्वयं प्रेमी जीव नहीं थे। व्यक्तिगत स्तर पर उन्हें प्रेम के विभिन्न पक्षों का अनुभव नहीं प्राप्त हो सका था। इसलिए

उनका प्रेम-चित्रण अधिकांशतः काव्य एवं काव्यशास्त्रीय परम्परा से अर्जित जानकारी पर आधारित था। रीतिमुक्त कवियों में अधिकांश को प्रेम के संयोग और वियोग—दोनों पक्षों का व्यक्तिगत अनुभव अवश्य था, लेकिन अंततः उनका प्रेम उभयनिष्ठ और संयोग में ही पर्यवसित हुआ। परन्तु घनानन्द को अत्यल्प-कालिक संयोग के बाद स्थायी रूप से वियोग को झेलना पड़ा था और सुजान की निर्मम उपेक्षा के कारण वह जीवन में एकतरफा ही सिद्ध हुआ। इनका अधिकांश काव्य इस वियोग काल में ही लिखा गया है। अतः इसमें संयोग का चित्रण भी वियोग की गहरी छाया से अनुशासित है।

अपनी भाव-सम्पदा के साथ ही भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से भी घनानन्द अपने समकालीन कवियों से पर्याप्त भिन्न दिखाई देते हैं। सजी-सँवरी अत्यन्त व्यंजक एवं लोकोक्ति-मुहावरों से युक्त व्याकरण सम्मत ब्रजभाषा, चित्रोपम एवं लाक्षणिक विशेषण, सूक्ष्म भावों का सम्मूर्तन, विरोधाभास एवं विरोध-वैचित्र्य, प्रयोग-वैचित्र्य, गहन अर्थ गर्भित श्लेष, भावानुकूल एवं लयपूर्ण अनुप्रास योजना आदि सभी दृष्टियों से घनानन्द पूरे रीतिकाल में अपनी एक अलग पहचान बनाते हैं। इनकी इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है : 'प्रेम की पीर ही लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम-मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।'

(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२०)

४. कुछ निजी विशेषताएँ

घनानन्द की भाव-सम्पदा और उनके काव्य शिल्प की विशेषताओं का समुचित परिचय प्राप्त करने के लिए, एतद्विषयक उनकी कुछ निजी विशेषताओं की जानकारी आवश्यक है। इसकी ओर संकेत करते हुए कवि-मित्र एवं उसके प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने लिखा है :

'बिनती कर जोरि कैं बात कहौं, जौ सुनौ मन कान दै हेत सों जू।
कबिता घनआनँद की न सुनौ पहचान नहीं उहि खेत सों जू।।'

—घनआनन्द कबित्त, पृ० २७४/७

'यदि उस खेत (क्षेत्र) से पहचान नहीं है, तो घनानन्द की कविता को मत सुनो।' यह क्षेत्र विषम या एकतरफा प्रेम की अनिर्वचनीय व्यथा का क्षेत्र है, जो उस काल के काव्यमर्मियों के लिए अनपहचान का क्षेत्र बन गया था।

वस्तुत: घनानन्द एक ऐसे युग के कवि हैं, जिसमें अधिकांश कवियों में निजी विशेषताओं का सर्वथा अभाव दिखाई देता है। चिन्तामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम, पद्माकर आदि अधिकांश रीतिबद्ध कवियों में पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रीय परिपाटी का अंधानुकरण करने के कारण प्राय: एकरसता दिखायी देती है। अत: एक को दूसरे से अलग करके पहचान पाना लगभग असंभव है। लेकिन रीतिकाल की रीतिमुक्त स्वच्छन्द काव्यधारा की अपनी सामान्य विशेषताओं के बावजूद इसके कवि अपनी निजी विशेषताएँ भी रखते हैं, जिन्हें भाव, भाषा-शिल्प आदि सभी क्षेत्रों में आसानी से देखा जा सकता है। घनानन्द इस धारा के सर्वोत्तम कवि हैं। इस उत्तमता का आधार इनकी सर्वाधिक निजी विशेषताएँ ही हैं। इन विशेषताओं को घनानन्द के प्रशस्तिकार ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

'नेही महा, ब्रजभाषा-प्रबीन और सुन्दरतानि के भेद कों जानै।
जोग-बियोग की रीति मैं कोबिद, भावना-भेद-सरूप को ठानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरें-मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा प्रबीन, सुछंद सदा रहै, सो घनजी के कबित्त बखानै।।'

—घनआनन्द कबित्त, पृ० ४१/१

'घनानन्द की कविता का समुचित मूल्यांकन केवल वही कर सकता है, जो स्वयं बहुत बड़ा प्रेमी हो, ब्रजभाषा में निपुण, सुन्दरता के भेदोपभेदों का पारखी

हो, संयोग और वियोग की विभिन्न मनोदशाओं का आत्मानुभूति के स्तर पर ज्ञाता हो, भावना के विभिन्न भेदोपभेदों तथा उनके स्वरूप को ठीक से समझता हो, प्रेम के रंग से जिसका हृदय सराबोर हो, संयोग और वियोग—दोनों ही स्थितियों में जो समान रूप से अशांत बना रहे, भाषा की सामान्य गतिविधियों से परिचित हो और किसी प्रकार के बंधन को न स्वीकार कर जो स्वच्छंद रहे।' यहाँ ब्रजनाथ ने घनानन्द के काव्य के लिए जिन पाठकीय अपेक्षाओं की ओर संकेत किया है, वे ही कवि की निजी विशेषताएं भी हैं। इन विशेषताओं से घनानन्द एक स्वच्छन्द प्रेमी-कलाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। इन्हें आद्यन्त ध्यान में रखकर ही उनकी कविता को ठीक से समझा जा सकता है। ब्रजनाथ ने आगे लिखा है :

> जग की कविताई के धोखे रहै ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी।
> समुझै कविता घनआनंद की हिय आँखिन नेह की पीर तकी।।
>
> —घनआनन्द कवित्त, पृ० ४१/३

यहाँ प्रशस्तिकार ने 'जग की कविताई' अर्थात् अन्य लोगों (रीतिबद्ध कवियों) की कविता से घनानंद की कविता की भिन्नता को संकेतित किया है। इस भिन्नता का मुख्य आधार है स्वानुभूति की प्रधानता। रीतिबद्ध कवियों की भाँति काव्य-शिक्षा इसका आधार नहीं है। इसलिए 'जो हृदय की आँखों से प्रेम की पीड़ा को देख सकने की सामर्थ्य रखता है, वही घनानन्द की कविता को समझ सकता है।' यहाँ 'हृदय की आँखों से देखने' के माध्यम से प्रशस्तिकार ने आत्मानुभव के स्तर पर समझने के तथ्य को संकेतित किया है। यह सांकेतिक अभिव्यक्ति घनानन्द की बहुत बड़ी विशेषता है। बिहारी तथा अन्यान्य रीतिबद्ध कवियों ने प्रेम की पीड़ा के इजहार के लिए जिस विरहजन्य ताप, कृशता आदि का अतिरंजित वर्णन किया है, उसका घनानन्द की कविता में सर्वथा अभाव है। अपनी अनुभयनिष्ठ प्रकृति के कारण घनानन्द की 'प्रेम की पीर' का स्वरूप ही कुछ विचित्र हो गया है। इस विचित्रता की ओर कवि ने स्वयं संकेत करते हुए लिखा है :

> 'पहचानै हरि कौन मो से अन पहचान कौं।
> त्यौं पुकार मधि मौन, कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं।।'
>
> —घनआनन्द कबित्त, पृ० ५२/२२

मौन के मध्य होने के कारण पुकार की अगम्यता को सुगम बनाने के लिए नेत्रों के मध्य ही कृपा के कान आवश्यक हैं, अर्थात् प्रिय की निष्ठुरता के सन्दर्भ में विरही की व्यथा का, उसकी भावभूमि पर पहुँच कर ही अनुभव किया जा

सकता है। वाणी के माध्यम से उसे सुनकर नहीं देखा (समझा) जा सकता, सहृदयतापूर्वक केवल देखकर ही सुना जा सकता है। घनानन्द की वाणी का वास्तविक वैभव हमें मौन के मध्य ही मिलेगा। विषम या एकतरफा प्रेम की पीड़ा की अभिव्यक्ति में इन्होंने प्रायः मौन की भाषा का सहारा लिया है। प्रेम की एकनिष्ठता और प्रिय द्वारा निरंतर उपेक्षा से उत्पन्न गंभीर स्थिति की ओर संकेत करते हुए कवि ने लिखा है :

'इते अनदेखे देखिबेई जोग दसा भई,
तैं तो आनाकानी ही सों बांध्यौ दीठि-तार है।
तेरें बहरावनि रुई है कान बीच, हाय,
विरही बिचारन की मौन में पुकार है।।
—घनआनन्द कबित्त, पृ० १४३/१८६

प्रिय-पक्ष से इस निर्मम उपेक्षा के बावजूद प्रेमी निराश नहीं होता। उसमें एक अदम्य साहस और विश्वास भी दिखाई देता है :

'आनाकानी-आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं,
कहा मो चकित दसा-त्यौं न दीठि डोलि है।
मौन हू सो देखिहौं, कितेक पन पालिहो जू,
कूक भरी मूकता बुलाय आप बोलिहै।
जान, घनआनंद यौं मोहिं तुम्हैं पैज परी,
जानियै गी टेक टरें कौन धौं मलोलि है।
रुई दियें रहौगे कहा लौं बहराइबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलि है।।'
—घनआनन्द कवित्त, पृ० ६६/१०४

निष्ठुर और अनुपस्थित प्रिय को संबोधित विरहिणी की इस उक्ति में एक विशेष प्रकार का साहस और आत्मविश्वास झलकता है। वह कहती है कि 'तुम कब तक बहानेबाजी का दर्पण देखते रहोगे, अर्थात् जान-बूझ कर कब तक मेरी उपेक्षा करते रहोगे ? क्या मेरी चकित कर देने वाली इस दशा को देखकर भी तुम अविचल रह सकोगे ? मैं मौन भाव से देख रही हूँ कि तुम कब तक अपनी न देखने की (विमुख रहने की) प्रतिज्ञा का पालन करते हो ! मेरा हाहाकार (कूक) से भरा मौन (मूकता) तुम्हारे मौन (उपेक्षा भाव) को समाप्त कर ही दम लेगा।' विरहिणी दृढ़ विश्वास के साथ चुनौती भरे शब्दों में आगे कहती है कि 'अत्यधिक आनन्द से युक्त प्रिय सुजान ! तुम्हारे और मेरे बीच विमुख रहने और अपने अनुकूल बना लेने की होड़ लगी हुई है। अब देखना है कि अपनी प्रतिज्ञा से टलने

का मलाल (पछतावा) किसे होता है! तुम कब तक बहानेबाजी की रूई अपने कान में दिए रहोगे, अर्थात् बहरा बनने के बहाने पर कब तक टिके रहोगे? कभी तो मेरी इस मौन पुकार से तुम्हारे कान खुलेंगे अर्थात् मेरा यह मौन तुम्हारे निर्मम उपेक्षाभाव को समाप्त करके ही साँस लेगा।'

'मौन' घनानन्द की एक महत्वपूर्ण निजी अवधारणा है, जो प्रेमी और प्रिय के पारस्परिक सम्बन्धों तक सीमित न रह कर उनके पूरे काव्य-शिल्प में भी व्याप्त है। एक व्यंजना-शिल्प के रूप में, काव्य के अन्तर्गत मौन की वास्तविक गरिमा को पूरे मध्यकाल में केवल घनानन्द ने ही समुचित रूप से समझा था। इस सम्बन्ध में उनकी स्पष्ट मान्यता है :

'उर-भौन मैं मौन को घूँघट कै दुरि वैठी विराजति बात-बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सों सुलसै हुलसै रस-रूप-मनी।
रसना-अली कान-गली मधि ह्वै पधरावति लै चित्त-सेज ठनी।
घनआनँद बूझनि-अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान-धनी।।

—घनआनन्द कवित्त, पृ० १८६/२७४

'कविता रूपी नव वधू मौन का घूँघट डाले हृदय रूपी भवन में छिप कर विराजमान है। कोमल-कांत शब्दार्थ (पदारथ) रूपी आभूपणों से सुसज्जित आनन्द स्वरूप वह मणि (कविता) उमंगित (मिलनोत्सुक) होती है। उसकी यह मिलनोत्कण्ठा जिह्वा रूपी सखी के माध्यम से पूरी होती है, जो श्रवण रूपी गली के मार्ग से उसे चित्त रूपी सुसज्जित शैया पर ले आती है। वहाँ नायक रूपी चतुर सहृदय (रिझवार) अपनी काव्य-समझ रूपी गोदी में उसे लेकर विलास करता है।' कवि ने यहाँ एक प्रकार से काव्य की आन्तरिक विशेषता के साथ ही पाठक की पात्रता की ओर भी संकेत किया है— 'बूझनि अंक' और 'रिझवार सुजान' शब्दों का प्रयोग इसका स्पष्ट प्रमाण है।

विषम प्रेम की अनिर्वचनीय विरहाभूति की अभिव्यक्ति में घनानन्द ने प्रायः मौन की सांकेतिक पद्धति का सहारा लिया है। यह सांकेतिकता उनकी निजी विशेषता है, जिसे एक उदाहरण के माध्यम से अच्छी तरह समझा जा सकता है :

'कंत रमै उर अन्तर में सुलहै नहिं क्यों सुखरासि निरंतर।
दंत रहैं गहें आँगुरी ते जु वियोग के तेह तचे परतंतर।
जो दुख देखति हौं घनआनँद रैनि-दिना बिन जान सुतंतर।
जानैं वेई दिन-राति बखानें ते जाय परै दिन-रात को अंतर।।'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ६७/२०७

वस्तुतः विरह-वेदना अनुभवगम्य है। वह वाणी द्वारा प्रकट नहीं की जा

सकती । विरहिणी का यह कथन कि 'प्रेम की वश्यता स्वीकार करके, उसकी आँच में अच्छी तरह तपने वाले लोग भी, मेरी पीड़ा को देखकर दाँतों-तले अँगुली दबाए रह जाते हैं'—विरह-वेदना की स्थिति का विवरण नहीं, वरन् उसकी सांकेतिक व्यंजना है। *'बखाने ते जाए परै दिन-राति को अंतर'*—में जो व्यंजना है, वह स्थिति के कथन में कभी नहीं आ सकती । इस प्रकार प्रेम-पद्धति और व्यंजना-शिल्प—दोनों ही दृष्टियों से घनानन्द की अपनी कुछ निजी विशेषताएँ हैं, जिन्हें ध्यान में रखकर ही उनके काव्यगत वैशिष्ट्य को समुचित रूप से समझा जा सकता है ।

५. प्रेम का स्वरूप

अन्यान्य रीतिबद्ध कवियों की भाँति घनानन्द ने अपने काव्य में प्रेम का केवल चित्रण ही नहीं किया है, वरन् अपने जीवन में भी ये प्रेम मार्ग के 'धीर पथिक' रहे हैं। जीवन-परिचय के सन्दर्भ में हमने इस तथ्य पर विचार कर लिया है कि सुजान के प्रति इनका प्रेम विषम (एकतरफा) सिद्ध हुआ। अपने काव्य में भी इन्होंने अधिकांशतः विषम प्रेम की पीड़ा को ही अंकित किया है। घनानन्द का जो भी ज्ञात जीवन वृत्त हमारे सामने है, उसे ध्यान में रखकर यदि उनका काव्य पढ़ा जाए तो ऐसा लगता है कि इन्होंने सुजान के साथ अपने सम्बन्धों को ही बार-बार दुहराया है। इनके संयोग-चित्रण को भी देखने पर यही लगता है कि इस अनुभूति को भी कवि ने अपने वियोग काल में ही काव्यबद्ध किया है। इसलिए उस पर भी विषम प्रेम-जन्य वेदना की गहरी छाया मँडराती हुई दिखाई देती है।

भारतीय काव्य परम्परा के साथ ही सामाजिक परम्परा की दृष्टि से भी विषम या एकतरफा प्रेम को स्वीकृति नहीं मिली है। हमारी काव्यशास्त्रीय परम्परा में परकीया प्रेम को अत्यधिक विस्तार मिलने के बावजूद एकतरफा प्रेम को असामाजिक मानकर निषिद्ध ठहराया गया है। प्रिय की निर्मम उपेक्षा के बाद भी उससे एकनिष्ठ भाव से प्रेम किए जाना भारतीय प्रेम पद्धति के नितांत विरुद्ध है। फारसी काव्य में सूफी प्रभाववश इस प्रकार के प्रेम को आदर्श के रूप में स्वीकार किया गया है। घनानन्द के साथ ही अधिकांश रीतिमुक्त कवियों पर भी इस प्रेम-पद्धति का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। बोधा में फारसी शब्दावली का प्रचुर प्रयोग फारसी काव्य के ढर्रे पर मिलता है। यह उनके फारसी साहित्य से परिचय का सूचक है। घनानन्द का फारसी भाषा से परिचय इनकी 'वियोग वेलि', 'इश्कलता' आदि रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है। प्रेम के विषम रूप और उसकी पीड़ापरकता की दृष्टि से भी घनानन्द पर फारसी साहित्य का प्रचुर प्रभाव है। इनके भड़ौवाकार ने तो इन्हें फारसी का भाव और मजमून—दोनों की चोरी करने वाला कहा है। लेकिन यह प्रभाव केवल प्रेरणा तक ही सीमित है। जिस प्रकार इन्होंने फारसी के एकतरफा प्रेम को सुजान के माध्यम से अपने जीवन में उतारा है, ठीक उसी प्रकार फारसी की लाक्षणिकता को अपनी भाषा की उपेक्षित सामग्री लोकोक्ति-मुहावरे, रूढ़ लक्षणाओं आदि में ढाला है। यही स्थिति ठाकुर की भी है। लोकोक्तियों और मुहावरों की जो छटा ठाकुर में मिलती है, उस पर कहीं से भी फारसी की छाप नहीं देखी जा सकती। विषम प्रेम के सम्बन्ध में उनका एक

उदाहरण है :

'वा निरमोहिनि रूप की रासि जोऊ उर हेत न ठानति ह्वै हैं।
बारहुँ बार बिलोकि घरी-घरी सूरत तौ पहिचानति ह्वै हैं।
ठाकुर या मन की परतीति है जो पै सनेह न मानति ह्वै हैं।
आवत हैं नित मेरे लिए इतनो त बिसेष कै जानति ह्वै है।।

यहाँ प्रिया को निर्मोही बताया गया है। लेकिन उसके क्रिया-कलाप से किसी प्रकार की निष्ठुरता नहीं दिखाई गई है। प्रेमी मात्र इसलिए उसके निकट से बार-बार गुजरता है कि नायिका उसकी शक्ल-सूरत को पहचान ले। प्रेमी केवल इस विश्वास से संतुष्ट है यदि नायिका प्रेम न भी करती-होगी, तब भी वह इतना अवश्य समझती होगी कि 'मेरे लिए ही वह नित्य आता है।' यह एकतरफा प्रेम की एक स्थिति है, जिसमें प्रेमी को पता लग जाना पर्याप्त है कि प्रिय उसके प्रेम को जानता है। लेकिन फारसी साहित्य की प्रेम-पद्धति की चरमदशा तो वह है, जहाँ प्रिय की उपेक्षा के बावजूद प्रेमी एकनिष्ठ भाव से प्रेम किए जाता है—केवल इस आशा पर कि शायद कभी उसकी सहानुभूति मिल जाए। यदि उसे यह भी विश्वास हो जाए कि प्रेम-साधना में उसकी मृत्यु के बाद प्रिय के मुख से करुणाजनित सहानुभूति के दो शब्द निकल जाएँगे या उसकी आँखों में दो बूंद आँसू आ जाएँगे तो प्रेमी प्रसन्नतापूर्वक प्राणोत्सर्ग के लिए भी तैयार हो सकता है। लेकिन ठाकुर के यहाँ ऐसी स्थिति नहीं है। वैसे तो बोधा भी यह स्वीकार करते हैं :

'हमको वह चाहै कि चाहै नहीं, हमैं नेह को नातो निबाहनो है।'

लेकिन वे इस स्थिति तक भी पहुँच जाते हैं कि

'विष खाइ मरै कि गिरै गिरिते दगादार ते यारी कभी न करै।'

समूची रीतिमुक्त काव्यधारा में घनानन्द ही एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने एकनिष्ठ भाव से 'दगादार से यारी' की है। प्रिय की लाख उपेक्षा और निष्ठुरता के बावजूद प्रेम के प्रति उनमें कहीं विचलन नहीं दिखाई देता। प्रिय की निष्ठुरता को जानते हुए भी उसके प्रति एकनिष्ठ भाव से उन्मुख रहना, प्रेम को साधन की अपेक्षा साध्य मान लेना है। प्रिय के हृदय में अपने प्रति प्रेम को असंभव मानते हुए घनानन्द की विरहिणी कहती है :

'चंद चकोर की चाह करै, घनआनंद स्वाति पपीहा को धावै।
ज्यौं त्रसरैनि के ऐन बसै रबि मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।
मोसो तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि, नेह निबाहिबो यौं छबि पावै।
ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर, सुरंकहि लै निज अंक बसावै।।'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ६५/२०२

अनुपस्थित प्रिय को सम्बोधित कर विरहिणी कह रही है कि 'जिस प्रकार चन्द्रमा चकोर से प्रेम करने लगे, स्वाति-जल प्रेमातुर हो कर पपीहे के पास आए, सूर्य त्रसरेणु (धूलि के चमकदार सबसे छोटे कण) के घर में निवास करने लगे, समुद्र अनाथ होकर मछली के पास दौड़ा आए, धन के अधिष्ठाता कुबेर अपनी इच्छा से अनुरागपूर्वक किसी अति निर्धन को अपनी गोद में बिठा ले·—जिस प्रकार ये सभी बातें असंभव हैं, ठीक उसी प्रकार आपका मेरे साथ प्रेम-निर्वाह भी असंभव है। इस एकतरफापन के बावजूद एकनिष्ठ भाव से प्रिय के प्रति समर्पण घनानन्द के प्रेम की वहुत बड़ी विशेषता है :

घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, जिहि भाँतिन हौं दुख-सूल सहौं।
नहिं आवनि औधि न रावरी आस, इते पर एक सी बाट चहौं।
यह देखि अकारन मेरी दसा, कोउ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं।
जिय नेकु विचारि कै देहु बताय, हहा पिय दूरि ते पाँय गहौं॥

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ ८८/२७३

प्रिय ने अपने आने की न कोई निश्चित अवधि दी है और न ही उससे इस प्रकार की आशा की जा सकती है। फिर भी विरहिणी एकनिष्ठ भाव से उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। एकतरफा प्रेम में इस प्रकार की एकनिष्ठता फारसी काव्य की विशेषता है। फारसी प्रेम-पद्धति की यह एकनिष्ठता और सूफियों के 'प्रेम की पीर' को घनानन्द ने अत्यन्त सहज रूप से अपनाया है। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इस प्रकार की एकनिष्ठता और 'प्रेम-पीर' कवि द्वारा कहीं से उधार ली गई है। अपनी वस्तुगत परिस्थितियों के फल-स्वरूप ये दोनों ही विशेषताएँ उसकी जीवनधारा और भावधारा के साथ संश्लिष्ट होकर कविता में आई हैं। इस वेदना का मूलस्रोत कवि-जीवन का एकतरफा, किन्तु एकनिष्ठ प्रेम रहा है। विरहिणी का केवल प्रिय से यह पूछना कि 'मेरी अकारण विरहावस्था को देखकर कोई पूछेगा तो मैं उत्तर क्या दूंगी—तुम स्वयं सोचकर इसे बता दो।' नायिका की यह मनोदशा स्थिति को अत्यधिक हृदय-द्रावक बना देती है। यहाँ आकर अविचलित एकनिष्ठता फारसी-पद्धति के एक-तरफा प्रेम को भारतीय आचार-निष्ठा और प्रेमादर्श से समन्वित कर देती है। घनानन्द के प्रेम के स्वरूप को यदि इस सन्दर्भ में देखा जाए तो उसमें स्वच्छन्दता, परम साहसिकता, घोर रूपासक्ति, गहरी तन्मयता, भावनामूलकता, निष्कामता आदि प्रेम की अन्यान्य विभूतियाँ विषम प्रेम को सिंचित कर उसे एक अभिनव आचार से जोड़ती हैं। अतः एकतरफापन या विषमता को केन्द्र में रखकर उक्त विशेषताओं के विवेचन द्वारा हम घनानन्द के प्रेम के स्वरूप को आसानी से समझ सकते हैं।

घनानन्द के प्रेम के स्वच्छन्द स्वरूप को यदि गहराई से देखा जाए तो हमें स्पष्ट रूप से दिखाई देगा कि उसका वास्तविक अभिप्राय प्रेम की स्वच्छन्द क्रीड़ा या सामाजिक विधि-निषेधों की अस्वीकृति मात्र नहीं है। यह **स्वच्छन्दता** विषम प्रेम की एकनिष्ठता से अनुशासित है, जिसके मूल में **परम साहसिकता** के दर्शन होते हैं :

'अन्तरहौ किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागिनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं, अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।

पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हें, धरनी में धसौं कि अकासहिं चीरौं॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १२७/४१६

यहाँ विरहिणी का उद्दाम आवेग प्रकट हुआ है। वह अनुपस्थित प्रिय को सम्बोधित करके कह रही है कि 'तुम मेरे हृदय में हो या अन्यत्र कहीं—इसका मैं निर्णय नहीं कर पा रही हूँ। अतः तुम्हें आँखें फाड़कर बाहर खोजूँ या अपने भाग्य को रोऊँ। तुम्हें प्राप्त करने के लिए आग में जलूँ या पानी में डूबूँ? अब क्या करूँ और किस प्रकार अपने हृदय को धीरज बँधाऊँ? ऐ प्रिय! तुम्हारी प्राप्ति के लिए पृथ्वी में धसूँ या आकाश को चीरूँ?' इस प्रकार की अधीर साहसिकता के पीछे एक विशेष प्रकार की दृढ़ता है, जो कभी-कभी हठ या चुनौती की सीमा तक पहुँच जाती है :

'तुम दीनी पीठि, दीठ कीनी सन्मुख याने,
तुम पैंडे परे, राखि रह्यौ यह प्रान कों।
तुम बसौ न्यारे, यह नेकहू न हातो होय,
तुम दुखदाई, यह करै सुख-दान कों।
सुनौ घनआनन्द सुजान हौ अमोही तुम,
याको माहमोह मो बिना न जाने आन कों।
और सबै सहौं कछू कहौं न कहा है बस,
तुम्हैं बदौं तौ पै जौ बरजि राखौ ध्यान कों॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १००/३१०

यहाँ अनुपस्थित प्रिय को सम्बोधित करते हुए विरहिणी कह रही है कि 'बिना किसी उपालम्भ के मैं सब कुछ सह रही हूँ और इसके लिए विवश भी हूँ। लेकिन तुम्हें तब मानूँ, जब तुम मेरे ध्यान को भी रोक दो। जिस समय से तुम विमुख हुए हो, उसी समय से इसने (ध्यान ने) तुम्हारी ओर दृष्टि की है, अर्थात् तुम्हारे सम्मुख हुआ है। तुम मेरे जिन प्राणों के पीछे पड़े हो, यह (ध्यान) उसकी

निरन्तर रक्षा कर रहा है, अर्थात् तुम्हारे ध्यान में ही मैं जीवित हूँ। तुम मुझसे अलग रहते हो, लेकिन यह (तुम्हारा ध्यान) मुझसे एक पल के लिए भी अलग नहीं होता। तुम मुझे दुख देने वाले हो, लेकिन यह मुझे निरंतर सुख देता रहता है। तुम मेरे प्रति निष्ठुर हो, लेकिन यह मोह से ग्रस्त होकर मेरे अतिरिक्त और किसी को जानता ही नहीं।' हठ की सीमा तक पहुँची हुई इस साहसिकता का आधार एकनिष्ठता है। इसमें यदि कहीं उलाहने की बात आती भी है तो वह आक्रोश-विहीन एक असहाय विवशता के ही रूप में :

'तेरे देखिबे कौं सबहीं त्यौं अनदेखी करी,
तऊँ जौ न देखैं तौ दिखाऊँ काहि गति रे।
सुनि निरमोही एक तोही सों लगाव मोही,
सोही कहि कैसें ऐसी निठुराई अति रे।
विष सी कथानि मानि सुधा पान करौं जान!
जीवन निधान है बिमासी मारि मति रे।
जाहि जो भजै सो ताहि तजै घन आनन्द क्यों,
हति कै हितूनि कहौं काहू पाई पति रे॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ७८/२४१

प्रेमी और प्रिय के मध्य यह वैषम्यमूलक विरोध-भाव केवल प्रिय पक्ष से है। प्रेमी की सर्वात्मना समर्पण-भावना को यह विरोध पुष्ट करता है और कष्ट-सहन से लेकर आत्मपीड़न तक के लिए प्रेरित करता है। अपने इस रूप में घनानन्द के यहाँ प्रेम क्रीड़ा-विलास न रह कर एक कठोर साधना बन गया है :

'गरल गुमान की गरावनि दसा को पान,
करि करि, द्यौस रैनि प्रान घट घोटिबो।
हेत-खेत-धूरि चूरि-चूरि साँस पाँव राखि,
विष-समुदेग-बान आगें उर ओटिबो।
जान प्यारे जौ न मन आनैं तौ आनन्दघन,
भूलि तू न सुमिरि परेखैं चख चोटिबो।
तिन्हैं यौ सिराति छाती तोहि वै लगति ताती,
तेरे बाँटे आयौं है अँगारनि पै लोटिबो।'

—घनआनन्द कबित्त, ५६

विष के गर्व को चूर कर देने वाली भीषण विरह-दशा को स्वीकार (पान) कर, रात-दिन प्राणों को, शरीर के अन्दर घोटते हुए, प्रेम के रण-क्षेत्र की धूलि में अपनी साँस को चूर-चूर करते हुए, विरहजन्य व्याकुलता के विषाक्त बाणों की

घाव को अपने सीने पर साहसपूर्वक झेलने वाले प्राणों को विरहिणी धैर्य बँधाती है। वह कहती है कि 'यदि इतना सब करने पर भी प्रिय अनुकूल नहीं होता तो तुम (प्राण) उसके प्रेमपूर्ण कटाक्ष से घायल होने की व्यथा पर भूलकर भी पश्चाताप न करो। क्योंकि जिसमें तुम्हें पीड़ा होती है, उसी (निष्ठुरता) में उनका हृदय शीतल होता है। अतः तुम इस बात को तय मान लो कि अंगारों पर लेटना, अर्थात् कष्ट सहन करना ही तुम्हारे भाग्य (हिस्से) में आया है।' इस प्रकार हम देखते हैं कि घनानन्द के स्वच्छन्द प्रेम में निहित साहसिकता आत्मनिग्रह से अनुशासित है। बाह्य विधि-निषेधों के उल्लंघन के बावजूद इसमें एक सदाचारमूलक नैतिक आत्मानुशासन मिलता है। अतः स्वच्छन्दता और साहसिकता घनानन्द के यहाँ फारसी साहित्य से भिन्न भारतीय आचार और शील से समन्वित होकर आयी हैं। प्रिय के प्रति अशेष भाव से आत्म-समर्पण, विदेशी प्रभाव का परिष्कार करते हुए उसे देश की आदर्श परम्परा से जोड़ता है।

घनानन्द के प्रेम में इस प्रकार की एकनिष्ठता और अदम्य साहसिकता का मूल आधार है **घोर आसक्ति**। इनका प्रेम साहचर्य जन्य न होकर प्रथम दर्शन-जन्य है। अतः यहाँ आसक्ति मुख्यतः रूपासक्ति है, जिसका कारण प्रिय का अद्भुत सौन्दर्य है। इसे कुछ उदाहरणों द्वारा आसानी से समझा जा सकता है :

१. 'जब ते निहारे घनआनन्द सुजान प्यारे,
तब ते अनोखी आगि लागि रही चाह की।'
—घनआनन्द कबित्त, १८

२. 'जब ते निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब ते गही है उर आन देखिबे की आन।'
—घनआनन्द कबित्त, ४७४

३. 'जब ते सुजान प्यारे पुतरीनि तारे,
आँखिन बसे हौ सब सूनो जग जोहियै।'
—घनआनन्द कबित्त, ४७३

४. 'वह रूप की रासि लखी जब तें,
सखि आँखिन कैं हटतार भई।'
—घनआनन्द कबित्त, २५८

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि घनानन्द के यहाँ प्रेम का आधार प्रिय का अपार सौन्दर्य है, जिसमें दर्शनाभिलाषा ही सबसे प्रमुख है। घोर रूपासक्ति और देखने की अदम्य अभिलाषा वियोग के साथ ही इनके संयोग-चित्रणों में भी समान रूप से मिलती है। इस आसक्ति में न कहीं गार्हस्थ्य जीवन की अपेक्षाएँ हैं और न ही काम-वासना या शारीरिक सम्पर्क की आकांक्षा। इसमें मिलती है एक अशेष

अभिलाषा, जो कभी पूरी होने का नाम ही नहीं लेती :

'लगियै रहै लालसा देखन की किहि भाँति भटू निसि-द्यौस कटै।
करि भीर भरी यह पीर महा बिरहा तनकौ हिय तें न हटै।
घन आनन्द-जान-संयोग समै बिसमै बुधि एकै बेर बटै।
सपनो सो टरै फिरि सौगुनो चेटक बाढ़त डाढ़त घोटि घटै॥'
—घनआनन्द ग्रन्थावली, ८४/२६६

निरंतर देखते रहने की अभिलाषा के कारण नायिका का रात-दिन व्यतीत कर पाना कठिन हो गया है। 'संयोग के समय भी विरह की महान पीड़ा हृदय से एक पल के लिए भी नहीं हटती। संयोग की घड़ियों में बुद्धि इतनी चकित हो जाती है कि वे स्वप्न की भाँति बीत जाती है। उसके बीतते ही देखने का मोह बढ़कर शरीर को जलाते हुए मथने लगता है।' इस प्रकार संयोग और वियोग—दोनों ही स्थितियों में प्रिय को मन-भर देख पाने की साध कभी पूरी ही नहीं होती। इस तथ्य को एक दूसरे उदाहरण द्वारा और अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है :

'भोर तें साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ तें भोर लौं तारन ताकिबौ तारनि सों इकतार न टारति।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनन्द आँसुनि औसर गारति।
मोहन सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति॥'
—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ २११/८५

यह दिखसाध (देखने की इच्छा) बिहारी आदि अन्य समसामयिक कवियों से पर्याप्त भिन्न है। इसमें कहीं भी लुकाछिपी या मिलन के मौन संकेत नहीं मिलेंगे। साथ ही इसमें मध्या नायिका की काम और लज्जा के मध्य की स्थिति भी नहीं मिलेगी। यहाँ प्रिय के अन्दर तक उतर जाने या उसे अपने अन्दर उतार लेने की, सब कुछ देख-समझ लेने की आतुर आकांक्षा है। इसलिए वियोग की भाँति ही संयोग में भी प्रिय को भर आँख देख पाने की लालसा बनी ही रहती है। सामान्यत: संयोग के समय आसक्ति कुछ बाह्याचरण की ओर उन्मुख होती है, उसकी वास्तविक तीव्रता वियोग में ही देखने को मिलती है। लेकिन घनानन्द के यहाँ वह संयोग और वियोग—दोनों में समान रूप से बनी रहती है। आसक्ति की इस समतुल्यता के कारण इनके संयोग और वियोग—दोनों ही स्थितियों के चित्रणों में एक गहरी **तन्मयता** मिलती है। इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझने के लिए संयोग का एक उदाहरण लिया जा सकता है :

'सुनि री सजनी रजनी की कथा इन नैन चकोरन ज्यौं बितई।
मुख-चन्द सुजान सजीवन को लखि पाएँ भई कछु रीति नई।

अभिलाषनि आतुरताई घटा तबही घनआनन्द आनि छई।
सु विहाति न जानि परी भ्रम सी कब ह्वै विसवासिनि बीति गई।।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ८५/२६४

यहाँ नायिका द्वारा सखी के सम्मुख अपने संयोग के समय के अनुभवों का वर्णन है। इस काल के देव, मतिराम, पद्माकर आदि रीतिबद्ध कवियों के लिए इस तरह के प्रसंग अत्यन्त आकर्षक रहे हैं। उनके यहाँ नायिकाएँ अपने संयोगकालीन सुखद अनुभवों को अत्यन्त उत्साह के साथ अपनी सखियों के सामने विस्तार से प्रस्तुत करती हैं। रूपगर्विता और गुणगर्विता नायिकाएँ तो इस प्रकार के सुखद अनुभवों का अतिरंजित वर्णन करने में अघाती ही नहीं। लेकिन घनानन्द के यहाँ इस प्रकार के अनुभवों के वर्णन में भी कोई उत्साह या विशेष रुचि नहीं लक्षित होती। प्रस्तुत सवैये में नायिका प्रिय-मिलन से प्राप्त अनुभव को अत्यन्त असंतोष के साथ सखी के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए कहती है कि 'मिलन काल में प्रिय के मुख को देखते ही कुछ विलक्षण सा घटित हुआ। प्रिय के सम्मुख उपस्थित होते ही दर्शनाभिलाषा के आधिक्य ने मुझे कुछ इस प्रकार घेर लिया कि विश्वास-घातिनी रात किस प्रकार भ्रम की भाँति बीत गई—मुझे पता ही नहीं लगने पाया।' संयोग-काल की यह तल्लीनता, जिसमें मिलन-सुख का कहीं पता नहीं लगता, वियोग-काल में कुछ और ही रूप धारण कर लेती है :

'अभिलाखनि लाखनि भाँति भरी बरुनीन रूमांच ह्वै काँपति हैं।
घनआनन्द जान सुधाधर-मूरति चाहनि अंक मैं चाँपति हैं।
टग लाय रही पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपहिं झाँपति हैं।
जब तें तुम आवनि-औधि बदी तब तें अँखियाँ मग मापति हैं।।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ११०/३४८

जब से प्रिय ने आने की अवधि निश्चित कर दी है, तब से विरहिणी की आँखें निरन्तर उसका मार्ग नाप रही हैं। इस प्रक्रिया में लाख-लाख अभिलाषाओं से युक्त होकर बरौनियों का काँपना, प्रिय की कल्पित मूर्ति का आँखों द्वारा प्रेम-पूर्वक आलिंगन करना, उसके मार्ग में पलक-पाँवड़े बिछा कर टकटकी लगाए हुए चकोर की प्रतीक्षा को भी मात कर देना आदि क्रियाएँ विरहिणी की गहन तन्मयता को संकेतित करती हैं। झूठी दिलासा की प्रतीक्षा में लीन विरहिणी की सम्पूर्ण व्याकुलता इस सवैये में मुखरित हुई है। इस प्रकार की तन्मय प्रतीक्षा हमें मीरा के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलेगी।

घनानन्द के प्रेम के स्वरूप-निर्धारण में घोर आसक्ति और तन्मयता के साथ ही **भावना मूलकता** का भी महत्वपूर्ण योग है। वस्तुतः यह ऐसी विशेषता है, जो

इनके एकतरफा प्रेम को एक गुरु-गंभीर शील प्रदान करती है। प्रिय की निष्ठुरता को जानकर भी उसके प्रति एकनिष्ठ भाव से उन्मुख रहना, प्रेम के लिए प्रेम करना है—प्रेम को साधन के स्थान पर साध्य मान लेना है। स्वयं पीड़ा सहकर भी प्रिय को कभी भला-बुरा न कहना, उसकी निरन्तर मंगल-कामना करना, भावना को भावना के स्तर पर जीना है। घनानन्द का प्रेम बहुत-कुछ ऐसा ही है। इसे कुछ उदाहरणों द्वारा आसानी से समझा जा सकता है :

'जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
कैसें करि जिय की जरनि सो जताइयै।

रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै, भाग
आपने ही ऐसे, दोप काहि धौं लगाइयै॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ५८६/५

प्रिय की निष्ठुरता और अपने एकतरफा प्रेम से उत्पन्न विलक्षण पीड़ा से व्याकुल विरहिणी प्रिय को दोषी न मानकर स्वयं अपने भाग्य को ही उत्तरदायी ठहराती है। अनुभयनिष्ठ प्रेम की जलन का इजहार करना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अस्वाभाविक है। इसलिए विरहिणी अन्दर-अन्दर ही घुटती रहती है। वह अपनी विरह-वेदना को सहज रूप से सिर-माथे लेकर प्रिय की मंगल-कामना करती है :

'इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसें उराहनौं दीजियै जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई, जु कछू मन माईं सु कीजियै जू।
घनआनन्द जीवन-प्रान सुजान ! तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ तुम्हैं चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू॥'

घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ८३/२५७

विरहिणी का यह कथन कि 'भाग्य के बँटवारे में मेरे हिस्से तुम्हारा स्मरण और तुम्हारे हिस्से में मुझे भूलना आया है। अतः तुम्हें उलाहना भी कैसे दे सकती हूँ। मुझे जो कुछ मिला है, उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया है। अब तुम्हें जो अच्छा लगे, करो। लेकिन इतना जान लो कि मैं तुम्हारी चर्चा के कारण ही जीवित हूँ। मेरे प्रति तुम्हारी कोई उत्कण्ठा नहीं है, फिर भी तुम कुशलपूर्वक रहो, यही मेरा आशीर्वाद है।' यह प्रेम आदर्श की उस भूमि पर प्रतिष्ठित है, जहाँ पहुँचकर प्रेमी अपने प्रेम का कोई प्रतिदान नहीं चाहता। वस्तुतः इस स्तर पर पहुँचा हुआ प्रेम अहैतुक या निष्काम बन जाता है। निष्कामता की इस स्थिति में प्रिय के अनिष्ट की आशंका मात्र से प्रेमी व्याकुल हो जाता है। इस प्रकार की निष्कामता प्रेम को

भक्ति की समकक्षता में स्थापित कर देती है। जिस प्रकार भक्ति की चरमावस्था में भक्त का भगवान के साथ एकात्म्य हो जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रेम की चरमावस्था में प्रेमी का प्रिय के साथ एकात्म्य हो जाता है। इस सम्बन्ध में घनानन्द ने प्रेम को भक्ति और ज्ञान-योग से भी अधिक महत्व देते हुए लिखा है :

'चंदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू ररै, एक देखिबे कों रहै द्वै।
ज्ञानहूँ तें आगे जाकी पदबी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै।
जान घनआनन्द अनोखो यह प्रेम-पंथ,
भूलें ते चलत, रहैं सुधि कै थकित ह्वै।
बुरौ जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना कैं छाले परैं प्यारे नेह-नावैं छ्वै॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ९५/२९६

यहाँ कवि ने प्रेम-योग को ज्ञान-योग से भी उच्च भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। क्योंकि यह अपनी चरम स्थिति में चन्द्रमा को चकोर और चकोर को चन्द्रमा की स्थिति में ला देता है। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ज्ञान की चरम दशा में ज्ञाता और ज्ञेय में अद्वैत स्थापित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रेम की चरम दशा में प्रेमी और प्रिय का अद्वैत हो जाता है। लेकिन घनानन्द ने 'चंदहि चकोर करै...' के माध्यम से सूफी प्रेम की उस दशा का संकेत किया है, जिसमें परमात्मा स्वयं जीव से मिलनातुर हो जाता है। प्रेम की इस अद्वैतता से उत्पन्न आनन्द (रस) में भोगियों की भोग-लिप्सा पूरी तरह तिरोहित हो जाती है। घनानन्द का प्रेम निष्कामता की इस स्थिति तक पहुँच कर वासना विहीन प्रेम का रूप धारण कर लेता है। प्रेम के इस अनोखे पथ पर आत्म-विस्मृत होकर ही चला जा सकता है, सतर्क होकर नहीं। अतः विषम होकर भी इनके प्रेम में अन्ततः एक समता की स्थिति मिलती है, जो प्रेमी को बहुत बड़ा बना देती है। वस्तुतः यह सूफी प्रेमादर्श है, जिसमें फारसी प्रेम की एकनिष्ठता और एकान्तिकता, सूफियों की पीड़ा, भारतीयता का आदर्श और भक्ति-भावना का सुन्दर पुट मिलता है। प्रेम के इस मिश्रित स्वरूप के सम्बन्ध में घनानन्द ने लिखा है :

'प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै बिचार,
बापुरो हहरि बार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एकरस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हैं देखें सरसायौ है।

ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोकलोकनि उमंड़ि उफनायौ है।
सोई घनआनन्द सुजान लागि हेत होत,
ऐसें मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ३८/११६

इस कवित्त के माध्यम से लौकिक और ईश्वरीय प्रेम के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में कवि की मान्यता स्पष्ट हुई है। अपने जीवन में बहुत मनन-मंथन के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि प्रेम एक महासागर है, विचार द्वारा जिसका पार नहीं पाया जा सकता। प्रेमी-युगल राधा और कृष्ण उस महासागर का विवश भाव से, एकरस होकर अवगाहन करते हैं, जिसके कारण वह उमंगित होता है। उनकी क्रीड़ाजनित उमंग से उठने वाली लहरों से छूटा हुआ एक तरल कण इस सम्पूर्ण लोक में उफन कर फैल गया है। वही उच्छिष्ट कण घनानन्द और सुजान के लौकिक प्रेम का आधार बना है। इससे स्पष्ट है कि कवि ने लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम का ही एक गोचर रूप माना है। इस ज्ञान के तहत ही उसका लौकिक प्रेम बाद में ईश्वरीय प्रेम में परिवर्तित हो गया है। वस्तुतः मध्य-कालीन चेतना की यह एक अनिवार्यता थी, जिसे हम सूर, तुलसी, नन्ददास, मीरां, रसखानि आदि में किसी-न-किसी रूप में अवश्य पाते हैं। घनानन्द का लौकिक प्रेम भी प्रेम के विविध सोपानों से होता हुआ अन्ततः अलौकिक प्रेम अर्थात् भक्ति में पर्यवसित हो गया है।

६. सौन्दर्य-बोध

घनानन्द के सहृदय पाठक और प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने इन्हें 'सुन्दरतानि के भेद को' जानने वाला कहा है। इसका तात्पर्य है, सौन्दर्य के भेदोपभेदों को जानने वाला और उसके रहस्य का पारखी। घोर रूपासक्ति के सन्दर्भ में हमने पहले इस तथ्य को देख लिया है कि इनके प्रेम का मूलाधार अद्भुत रूप या सौन्दर्य ही है। इसके फलस्वरूप घनानन्द ने सौन्दर्य का अत्यन्त मनोयोगपूर्ण अंकन किया है। इस दृष्टि से रीतिबद्ध ही नहीं, वरन् अन्य रीति मुक्त कवियों से घनानन्द में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। बोधा को विरह-निवेदन से ही अवकाश नहीं मिला और आलम सौन्दर्य-वर्णन में बहुत कुछ रीति के ढर्रे पर ही चले हैं। ठाकुर के पास सौन्दर्य के सूक्ष्म निरीक्षण की दृष्टि का पर्याप्त अभाव दिखाई देता है। जहाँ तक रीतिबद्ध कवियों का प्रश्न है, उन्होंने अनेक प्रकार के रूढ़ अप्रस्तुतों के माध्यम से उसे प्राय: आच्छन्न कर दिया है। उनकी दृष्टि सौन्दर्य की मात्रा दिखाने पर ही अधिक रही है, उसके प्रभाव की व्यंजना की ओर उनका ध्यान कम गया है। इसके साथ ही नखशिख के परम्पराबद्ध और सटीक चित्रण के कारण भी उसमें प्रभावोत्पादन की क्षमता का सर्वथा अभाव मिलता है। किन्तु घनानन्द की दृष्टि सौन्दर्य की बाहरी नाप-जोख पर न जाकर, उसके प्रभाव की व्यंजना पर अधिक रही है। अत: इनके सौन्दर्य-चित्रण में जो सूक्ष्मता और प्रभाव-क्षमता मिलती है, वह इस काल के अन्य कवियों में प्राय: दुर्लभ है।

घनानन्द के सौन्दर्यांकन में एक विशेष प्रकार की तल्लीनता या गहरी लिप्तता मिलती है। ये तटस्थ या वस्तुनिष्ठ दृष्टि से उसका वर्णन मात्र नहीं करते। स्वानुभूति की प्रबलता के कारण इनका द्रष्टा चित्त आलंबन की रूप-माधुरी के साथ इस प्रकार घुल-मिल गया है कि दोनों को एक-दूसरे से अलग कर पाना प्राय: असंभव हो गया है। घनानन्द के सौन्दर्य-चित्रण की यह विशेषता इन्हें अपने समसामयिकों से नितान्त भिन्न कर देती है। स्वानुभूति की ठोस भूमि पर आधारित होने के कारण इनकी सौन्दर्य-कल्पनाएँ क्रीड़ा मात्र न रहकर सौन्दर्य की पुनर्रचना करती हैं। इस तथ्य को एक उदाहरण द्वारा आसानी से समझा जा सकता है :

'अंग-अंग आभा-संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी सौंज रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम-छबि-हेरे की।

लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाह रूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
अकि धौं बिचित्रताई मो चित-चितेरे की ॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ६८/२११

यहाँ प्रिय का एक स्वानुभूत और भाव-प्रवण छायांकन है। प्रेमी के चित्त ने प्रिय के अंग-प्रत्यंग की छटा के साथ घुल-मिलकर, अपनी आंतरिक संवेदना से, उसके हँसने, बोलने आदि की आकर्षक क्रियाओं से युक्त और (संयोग काल में) अपने रोम-रोम से देखी गई रसपूर्ण छवि का एक सुस्थिर चित्र अपने प्रवाह रूपी नेत्रों, अर्थात् निरन्तर अश्रु प्रवाहित करने वाले नेत्रों में बना रखा है। यह विलक्षण वैपरीत्य—एक ओर स्थिर चित्र और दूसरी ओर प्रवाह में उसका स्थित होना—चित्रकार (प्रेमी) की समझ में नहीं आ रहा है। उसे दुविधा है कि प्रिय के सौन्दर्यगत चरित्र की किन्हीं विशेषताओं के कारण ऐसा हुआ है या मेरे चित्र-कार चित्त की विलक्षणता के कारण। वस्तुतः यहाँ चित्र और चित्रकार की एकतानता का संकेत है, जिसमें प्रिय-सौन्दर्य प्रेमी-हृदय से रंजित होकर प्रस्तुत हुआ है। हृदय के राग-रंग से उरेहा गया यह नितान्त व्यक्तिनिष्ठ चित्र पूरे रीतिकाल में अन्यत्र दुर्लभ है। इस दृष्टि से घनानन्द और रीतिबद्ध कवियों के अन्तर को समझने के लिए बिहारी का एतद्विषयक एक उदाहरण पर्याप्त सहायक हो सकता है :

लिखन बैठि जाकी सबी गहि-गहि गरब-गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥

—बि० रत्नाकर, दो० ३४७

यहाँ एक काव्य रूढ़ि पर आधारित अंकुरित यौवना नायिका के क्षण-क्षण बढ़ने वाले सौन्दर्य का चित्रण है। यहाँ भी कवि-कल्पना का चमत्कार है, लेकिन यह कल्पना स्वानुभूति के ठोस धरातल पर आधारित न होकर बुद्धि के क्रीड़ा-विलास पर आधारित है। अतः पाठक की क्रीड़ा-बुद्धि को चमत्कृत करने तक ही इसकी क्षमता भी सीमित है। इसके लिए कवि ने एक चमत्कारपूर्ण रूढ़ कल्पना का सहारा लिया है। अंकुरित यौवना नायिका का यथार्थ चित्र (शबीह) बनाने के लिए कई चित्रकार एकत्र हो गए हैं। लेकिन जब तक वे चित्र तैयार करते हैं, तब तक नायिका के सौन्दर्य में अपूर्व वृद्धि हो जाती है। इसलिए सभी चतुर चित्रकार उसके सौन्दर्यहन्ता के रूप में क्रूर प्रतीत होते हैं। वस्तुतः यहाँ सौन्दर्य के आन्तरिक प्रभाव का अंकन न होकर, उसकी मात्रागत वृद्धि को संकेतित किया गया है। घनानन्द के सौन्दर्यांकन में भी चमत्कार है, लेकिन यह चमत्कार

भाव विधायक है, जो रूप की चरित्रगत विशेषता और भावक के साथ उसके आन्तरिक सम्बन्ध को भी उद्घाटित करता है। बिहारी के चितेरे तटस्थ चित्रकार हैं, जब कि घनानन्द का चित्रकार स्वयं प्रेमी है और अपनी संयोग कालीन स्मृतियों का चित्र अपने मानस पटल पर अंकित किए हुए है। रूप या सौन्दर्य की इस आन्तरिक विशेषता को समझने के लिए एक दूसरा उदाहरण लिया जा सकता है :

'रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागै ज्यौं ज्यौ निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अधानि कहूँ नहिं आन तिहारियै।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० १५/६१

यहाँ कवि ने रूपगत सौन्दर्य की वास्तविक प्रकृति का उद्घाटन किया है, जिसे समुचित रूप से समझने के लिए संस्कृत के एक सौन्दर्यमर्मी कवि के इस कथन को सामने रखा जा सकता है—'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।' वस्तुतः वही सौन्दर्य (रूप) रमणीय है, जो देखने वाले के लिए क्षण-क्षण नवीनता उत्पन्न करें। 'नयो नयो लागै ज्यौं ज्यौं निहारियै'—के माध्यम से घनानन्द ने उसी रमणीय रूप का संकेत किया है। लेकिन सौन्दर्य का यह नित्य आकर्षण निरपेक्ष नहीं है, वह भोक्ता की सम्बन्ध-भावना पर निर्भर करता है, जो प्रिय-सौन्दर्य के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं संतोष ही नहीं प्राप्त करता। दर्शक और दृश्यमान रूप—दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध पर ही रूप के स्थायी आकर्षण की यह विशेषता आधारित है। घनानन्द ने अधिकांशतः एक सक्रिय भोक्ता के रूप में ही सौन्दर्य का अंकन किया है। फलस्वरूप उनके चित्रणों में सौन्दर्य के प्रभाव की ही अधिक व्यंजना मिलती है। ये नख-शिख-वर्णन के बारीक विवरणों या रूढ़ि पर आधारित सादृश्य योजना में न जाकर दो-चार आड़ी-तिरछी, किन्तु अत्यन्त भावोद्बोधक रेखाओं में बँधे सौन्दर्य-चित्र प्रस्तुत करने में अपना सानी नहीं रखते। एक अनूठे सौन्दर्य-चित्र के उदाहरण द्वारा इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है :

'झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि-फूलन की बरषा उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ५८५/२

'अत्यंत सुन्दर गौर मुख, कानों तक खिचे हुए लम्बे मस्त नेत्र, हृदय पर सौन्दर्य के फूलों की वृष्टि करने वाली हँसी, कपोलों पर क्रीड़ा करने वाली दो

चंचल लटें, सुन्दर ग्रीवा में सुशोभित होने वाली दो लड़ियों की मोती-माल और अंग-प्रत्यंग से उठने वाली शोभा की तरंगें—सब मिलाकर ऐसा प्रतीत होता है कि सौन्दर्य अभी पृथ्वी पर टपक पड़ेगा।' इसमें मुख, नेत्र, वाणी, हँसी, ग्रीवा, मुक्ता-माल आदि का उल्लेख अवश्य हुआ है, लेकिन यह चित्रण रीतिकवियों के परिपाटी-बद्ध नख-शिख वर्णन से पर्याप्त भिन्न है। यहाँ मुख, नेत्र, हँसी, लट, ग्रीवा आदि के रूप-रंग या आकार आदि को व्यक्त करने की ओर कवि की प्रवृत्ति नहीं है, जैसा कि प्राय: रीतिबद्ध कवियों ने परम्परागत उपमानों के माध्यम से किया है। यहाँ घनानन्द ने सौन्दर्य में निहित लावण्य और कांति के हृदय पर पड़ने वाले प्रभाव का ही अंकन किया है। 'परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै'—इस अंतिम चरण की पृष्ठभूमि के रूप में ऊपर के तीनों चरण आए हैं। 'अति सुन्दर' के द्वारा कवि ने सौन्दर्य की परिपूर्णता, उसके लबालब भरे होने को संकेतित किया है। इसी सन्दर्भ में उसके छलककर टपकने की बात सार्थक होती है। दृग के साथ 'छके' विशेषण अत्यंत व्यंजक है। इसमें संतोष के साथ ही फैलाव की स्थिति का भी बोध होता है। 'छबि-फूलन की बरषा' पद भी अत्यंत व्यंजक है। हँसकर बोलने में—किंचित् आघात से प्रफुल्लित पुष्पलता से पुष्पवृष्टि का आशय संकेतित हुआ है। शरीर पर फूलों की वृष्टि आह्लादजनक होती है, जिससे हृदय पर सौन्दर्य के फूलों की वृष्टि के आनन्द का आसानी से अनुमान किया जा सकता है। पुष्पवृष्टि प्रसन्नता की स्थिति में की जाती है। इससे नायिका की प्रसन्नता का भी आभास मिलता है। फलस्वरूप उसकी हँसी का आह्लादजनकत्व द्विगुणित होकर नायक के हृदय पर पड़ता है। तीसरी पंक्ति में चंचल लटों का कपोलों पर क्रीड़ा करना भी नायिका की एक विशेष भंगिमा द्योतित करता है। द्वितीय पंक्ति के 'हँसि बोलनि में' से यह स्पष्ट है कि नायक से वह हँस-हँसकर बातें कर रही है। इससे लटों का चंचल होकर हिलना स्वाभाविक है। इस प्रकार कवि ने यहाँ सौन्दर्य का एक अत्यन्त गतिशील चित्र प्रस्तुत किया है।

शरीर के विभिन्न अंगों के वर्णन की ओर भी घनानन्द की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इस दृष्टि से नेत्र, भ्रू, नासिका, ग्रीवा, पीठ, उदर, नाभि, पिंडली, मोरवा, एड़ी, पाँव आदि के वर्णन विशेष उल्लेखनीय हैं। इन वर्णनों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की दृष्टि इन अंगों के रूप-रंग के कथन की अपेक्षा प्रभाव-व्यंजना की ओर अधिक है। इसलिए इनके यहाँ अंग विशेष की अपेक्षा नायिका का भावभीना समग्र सौन्दर्य ही अधिक प्रत्यक्ष हुआ है :

'लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाव-भरी,
लसति ललित लोल-चख-तिरछानि मैं।
छवि को सदन गोरो वदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।

दसन दमक फैलि हियें मोती-माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जान मैं।।'
—घनआनन्द कवित्त पृ० ४/१

लज्जा में लिपटी, किन्तु रहस्यमय भावों से परिपूर्ण चंचल-तिरछे नेत्रों की चितवन, छवि-गृह के समान गौर मुख, सुन्दर ललाट, रस निचोड़ती हुई मीठी-कोमल मुस्कान, प्रिय के साथ प्रेमपूर्वक वार्तालाप की मुद्रा में दिखाई देने वाले दाँतों की आह्लादजनक आभा, भावपूर्ण अंग संचालन आदि के माध्यम से नायिका के अंगों और उसकी आंगिक क्रियाओं का कवि ने अत्यंत मोहक और गतिशील चित्र प्रस्तुत किया है। वस्तुत: यह नृत्य लीन नायिका का स्वानुभूति-रंजित चित्र है, जिसे सुजान आदि वेश्याओं के नृत्य के रूप में कवि ने स्वयं राजदरबार में देखा था। वीणावादन, गायन, नृत्यादि की विभिन्न भंगिमाओं से उसका प्रत्यक्ष परिचय था। फलस्वरूप नृत्य की अनेक मुद्राओं के अत्यन्त भावपूर्ण एवं जीवन्त चित्र प्रस्तुत करने में घनानन्द को पर्याप्त सफलता मिली है। इसके लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

'नीकी नासापुट ही की उचनि अचभे भरी,
मुरि कै इचनि सों न क्यौं हूं मन तें मुरै।
रूप-लाड़ जोबन-गरूर चोप चटक सों,
अनखि अनोखी तान गावै लै मिहीं सुरै।
सहज हसौंहीं छबि फबति रँगीले मुख,
दसननि जोतिजाल मोतीमाल सी रुरै।
सरस सुजान घनआनंद भिजावै प्रान,
गरबीली ग्रीवा जब अनि मान पै ढुरै।।'
—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ३२/९८

नृत्य में नासापुट की उठान, गति के प्रत्यावर्तन अर्थात् उसका पीछे लौटना, एक तरफ रूठने की मुद्रा में अनोखी तान का महीन सुर में गायन तो दूसरी तरफ सहज मुस्कान से युक्त दंतपंक्तियों की शोभा—इन सबके बीच गर्वीली ग्रीवा का मान की मुद्रा में मुड़ना आदि भावभीनी एवं सरस क्रियाएँ मन और प्राण को आनन्द से सिंचित कर देती हैं। यहाँ नृत्य का अत्यन्त मनोरम और सजीव दृश्य प्रस्तुत हुआ है। घनानन्द ग्रंथावली के अन्तर्गत 'सुजानहित' के १२१, १२७, १३३ संख्यक छंदों में भी घनानन्द ने नृत्यलीन नायिका का अत्यन्त मनोहारी अंकन किया है।

सौन्दर्य-वर्णन में घनानन्द ने रीतिमार्गीय कवियों की आलंकारिक पद्धति का भी कहीं-कहीं सहारा लिया है। वस्तुतः रूप का प्रभाव ग्रहण करने में नेत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः इसके अंकन में प्रायः सारूप्य या सादृश्य विधान की आवश्यकता पड़ जाती है। पीठ, कटि, बेणी, उदर, नाक, कान आदि के वर्णनों में कवि ने कहीं-कहीं सादृश्य की चमत्कारपूर्ण योजना भी की है। जैसे पीठ को, प्रियतम के प्यार की शिक्षा देने के लिए, काम देव द्वारा दी गयी पट्टी (तख्ती), उस पर पड़ी हुई वेणी को शोभा-सुमेरु की संधि-तटी या मान रूपी दुर्ग की घाटी या फिर रसराज (शृंगार) का प्रवाह कहना (घ०ग्रं०, पृ० ३४/१०३.) आदि एक प्रकार से परम्पराभुक्त मार्ग का ही अनुगमन है। लेकिन इस प्रकार के वर्णनों में भी कवि ने सादृश्य द्वारा केवल बाहरी रूपाकार-साम्य की अपेक्षा अंगों के प्रभाव पर ही अधिक ध्यान रखा है। पग-वर्णन के एक उदाहरण द्वारा इस तथ्य को अच्छी तरह समझा जा सकता है :

> 'रति-साँचे ढरी अछवाई भरी पिंडुरीन गुराइयै पेखि पगै।
> छबि घूमि घुरै न मुरै मुरवान सों लोभी खरो रस झूमि खगै।
> घनआनंद एड़िनि आनि मिड़ै तरवानि तरे तें भरै न डगै।
> मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै॥'
>
> —घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० १४/३६.

यहाँ पिंडली, मोरवा, एड़ी, तरवा (पगतली), महावर-युक्त पाँव का रूपाकार न देकर कवि ने उनकी आकर्षण-क्षमता की ही अभिव्यक्ति की है। अपनी निजी अनुभूतियों के मिश्रण के कारण इनके परम्परायुक्त चित्रणों में भी प्रभाव-कथन ही अधिक है। लेकिन इस प्रकार के वर्णन घनानन्द की निजी विशेषता को नहीं उद्घाटित करते।

वस्तुतः घनानन्द का सौन्दर्य बोध इनके लाक्षणिक विशेषणों में लक्षित किया जा सकता है, जो बिना किसी सादृश्य के उसे सम्मूर्तित करते हैं। सौन्दर्य के प्रति एक अछोर ललक और उसे अपने अन्दर उतार लेने की अशेष अभिलाषा, इनकी निजी विशेषता है। इस विशेषता के कारण घनानन्द का सौन्दर्य-चित्रण अपने समसामयिक कवियों से भिन्न अपनी एक निजी पहचान बनाता है।

७. संयोग-भावना

घनानन्द के प्रेम के स्वरूप की विलक्षणता के संदर्भ में हमने यह देख लिया है कि उसमें एक विशेष प्रकार का असंतोष या अशांति लक्षित होती है। इनके प्रशस्ति-कार ब्रजनाथ ने इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि 'बिछुरें मिलें प्रीतम सान्ति न मानै—' अर्थात् जो वियोग और संयोग—दोनों में ही एक-सा अशान्त बना रहे। वैसे घनानन्द का काव्य मुख्यतः वियोग प्रधान ही है लेकिन संयोग की तीव्र अनुभूति के बिना वियोग में गंभीरता नहीं आती। इस दृष्टि से विचार करें तो हम पाएँगे कि इनकी संयोग-भावना भी अत्यन्त प्रबल रही है। इन्होंने स्थूल शारीरिक सुख, बाहरी आनंदोल्लास, सहेट, मान-मर्दन, नोक-झोंक, नर्मोपचार आदि के प्रसंगों को त्याग कर मिलन में प्रायः दर्शनाभिलाषा के आधिक्य का ही चित्रण किया है, जिसमें एक स्थायी असंतोष की गहरी छाया मिलती है। संयोग और वियोग—दोनों की घोर अशान्ति के सम्बन्ध में यह उदाहरण पर्याप्त बोधक है :

'मुख-चाहनि-चाह-उमाहन को घनआनंद लाग्यौ रहैई झरै।
मन-भावन मीत सुजान संयोग बनै बिन कैसे वियोग टरै।
कब हूँ जौ दई-गति सों सपनो सो लखौं तौ मनोरथ-भीर भरै।
मिलिहू न मिलाप मिलै तनकौ उर की गति क्यौं करि ब्यौरि परै॥

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० २४/७२

यहाँ प्रेमी-हृदय की विचित्र एवं उलझी हुई स्थिति का चित्रण है। उसे वियोग की भाँति ही संयोग काल में भी मिलन-सुख का रंचमात्र अनुभव नहीं होता। एक तरफ तो प्रिय सुजान के संयोग के बिना वियोग नहीं टलता और वियोग काल में प्रिय-दर्शन के अभाव में नेत्र निरंतर झड़ी लगाए रहते हैं, तो दूसरी ओर दैवगति से यदि प्रिय स्वप्न की भाँति दिखाई भी दे गए तो अभिलाषाओं की ऐसी भीड़ लग जाती है कि उसे भर आँख देख पाना असंभव हो जाता है। फलस्वरूप मिलने पर भी मिलन-सुख की प्राप्ति नहीं होती। इस प्रकार घनानन्द के यहाँ संयोग क्षणिक मिलन मात्र है, सम्भोग की स्थायी दशा नहीं। इस सम्बन्ध में दूसरा उदाहरण है :

'सुनि री सजनी ! रजनी की कथा इन नैन चकोरन ज्यौं बितई।
मुख-चन्द सुजान सजीवन को लखि पाएँ भई कछु रीति नई।

अभिलाषनि आतुरताई-घटा तब ही घनआनंद आनि छई।
सुबिहाति न जानि परी भ्रम सी कब ह्वै बिसवासिनि बीति गई ॥'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ८५/२६४

रीतिबद्ध कवियों की संयोगिनी नायिकाओं के पास मिलनोपरान्त सखी-सहेलियों को सुनाए जाने के लिए बहुत सारे सरस वृत्तान्त मिलेंगे, जिन्हें कहते हुए वे थकतीं ही नहीं। इस उदाहरण में मिलनोपरान्त नायिका को सिर्फ अतृप्ति हाथ लगी है। रात्रि-मिलन की कथा में नायिका अपने नेत्रों की व्यथा ही बता पाती है। प्रिय के मुख को देखते ही अभिलाषाओं की व्याकुल घटा इस प्रकार छा गई कि उसे कुछ पता ही नहीं लग पाया कि विश्वासघातिनी रात भ्रम की भाँति कब बीत गई। यह तीव्र दर्शनाभिलाषा ही घनानन्द के यहाँ वियोग की भाँति ही संयोग की भी प्रमुख विशेषता है। इसे समझने के लिए संयोग का एक स्पष्ट और अपेक्षाकृत अधिक मांसल उदाहरण लिया जा सकता है :

'पौढ़े घनआनंद सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक-गति है।
भूषण उतारि अंग अंगहि सम्हारि, नाना
रुचि के विचार सों समोय सीझी मति है।
ठौर-ठौर लै लै राखैं औरै और अभिलाखैं,
बनत न भाखैं तेई जानैं दसा अति है।
मोह-मद-छाके चूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति है॥'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० २३/७०

यहाँ शारीरिक सम्पर्क भी है, लेकिन भाँति-भाँति की अभिलाषाओं के माध्यम से मानसिक असंतोष की इतनी तीव्रता व्यक्त हुई है कि शारीरिक लगाव प्राय: दब गया है। नायक के अंकस्थ होने पर भी नायिका का मन रंक जैसा अनुभव कर रहा है। आभूषणादि उतार कर वह अपने अंग-प्रत्यंग को मिलन के लिए तैयार करती है, लेकिन भाँति-भाँति की अभिलाषाओं के कारण उसका मन अतृप्ति से भर गया है। पूरी मस्ती, चुंबन, आलिंगनादि क्रियाओं के बावजूद यहाँ किसी को नाक-भौंह सिकोड़ने की जरूरत नहीं पड़ेगी। वस्तुत: इस प्रकार के ऐंद्रिक संभोग-चित्र घनानन्द के यहाँ विरल ही हैं। इनके संयोग की प्रमुख विशेषता 'संयोग में भी वियोग का बना रहना' ही है। प्रेम की प्रगाढ़ता के कारण घनानन्द के यहाँ प्राय: संयोग और वियोग के मध्य का अन्तराल लक्षित ही नहीं हो पाता। इस तथ्य को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है :

'ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैं घर कै दुख को सुख दोहतु है।
दृग-आगे तें बैरी टरै न कहूँ जगि-जोहनि-अंतर जोहतु है।
घनाआनंद मीत सुजान मिलें बसि बीच तऊ मति मोहतु है।
यह कैसो संजोगन बूझि परै जु बियोग न क्यौं हूँ बिछोहत है।।'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ३४, १०४

'प्रिय के निकट बैठे रहने पर भी नायिका के हृदय में दुख के लिए स्थायी स्थान बनाकर वियोग संयोग-सुख का दोहन करता है। यह शत्रु (वियोग) आँखों के सामने से कभी टलता ही नहीं, प्रिय को देखने के समय बीच में से झांकता रहता है। इस प्रकार प्रिय सुजान से मिलने पर भी हमारे मध्य उपस्थित होकर मन को मूच्छित कर देता है।' अतः नायिका यह समझ नहीं पाती कि 'यह कैसा संयोग है, जिसमें वियोग एक पल के लिए भी साथ नहीं छोड़ता।' इस प्रकार का वियोग-मिश्रित संयोग साहित्य के अन्तर्गत प्रायः नहीं मिलता। मध्या आदि नायिकाओं के सन्दर्भ में रीतिबद्ध कवियों ने संयोग में भी लज्जावश प्रिय को न देख पाने का वर्णन अवश्य किया है, लेकिन घनानन्द के यहाँ संयोग में भी वियोग के बने रहने की स्थिति उससे पर्याप्त भिन्न है। इस विशिष्ट स्थिति के कई कारण हो सकते हैं। पहला तो यह कि घनानन्द की अधिकांश काव्य-रचना अपनी प्रेयसी सुजान से वियुक्त होने के बाद लिखी गई है। जब तक इन्होंने लोकजीवन से संन्यास नहीं लिया था और एक विरही के रूप में जीवन व्यतीत किया था, तब तक के उनके संयोग-चित्रणों में वियोग की एक काली छाया मँडराती हुई दिखाई देती है। इसे एक मनोवैज्ञानिक कारण माना जा सकता है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि राजदरबार में सुजान से प्रेम करते हुए भी घनानन्द को उसकी निष्ठा के प्रति आशंका रही हो। इन दोनों कारणों के साथ एक तीसरा कारण यह हो सकता है कि प्रेम में प्रिय की महत्ता और अपनी लघुता की भावना संयोग में आश्चर्य और आशंका को सहज रूप से स्थान मिल गया हो। इन सभी तथ्यों को कुछ उदाहरणों के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है :

'मोहन अनूप रूप सुन्दर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की।
अनोखी हिलग दैया! बिछुरै तौ मिल्यौ चाहै,
मिले हू मैं मारै जारै खरक बिछोह की।।'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ८९/२७६

प्रिय के अनुपम सौन्दर्य को देखकर मन का महामोह की दशा से ग्रस्त होना ही यहाँ संयोग में भी वियोग की आशंका का कारण प्रतीत होता है। परम सौंदर्यवान प्रिय के मिलन पर आश्चर्य की भावना घनानन्द में प्रायः व्यक्त हुई है:

'देखे अनदेखनि-प्रतीति पेखियत प्यारे,
नीठ न परति जानि दीठ किधौं छल है।

कहा कहौं आनंद के घन जानराय हौ जू,
मिले हू तिहारे अनमिले की कुसल है।।'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० २०/६१

देखने पर भी न देखने की प्रतीति, प्रत्यक्ष में भी अप्रत्यक्ष का भ्रम और मिलन में भी अमिलभाव का पोषण प्रेमी की विलक्षण मनोदशा का सूचक है। इस विलक्षणता के मूल में कवि का जीवनगत विषम प्रेम ही प्रतीत होता है :

हिलग अनोखी क्यौं हूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै।
मिले हूँ मिले को सुख पायन पलक एकौ,
निपट विकल अनुलानि लागियै रहै।।'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ५८७/६

प्रेम का यह पंथ ही अनोखा है, जिसमें एक क्षण के लिए भी मन को चैन नहीं मिलता। पीड़ा से आपूरित हृदय में संयोग काल में भी बराबर आशंका (धरक) बनी रहती है। इसलिए मिलन के समय भी एक पल के लिए भी संयोग-सुख नहीं मिलता। यहाँ भी वियोग की आशंका ही संयोग-सुख से प्रेमी को वंचित रखती है। इस सम्बन्ध में रीतिमुक्त कवि ठाकुर ने एक महत्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन किया है :

'पर बीर मिले-बिछुरे की बिथा मिलि कै बिछुरै सोइ जानतु है।'

यहाँ संयोग और वियोग की व्यथा की अनिर्वचनीयता की ओर संकेत किया गया है। इसे 'संयुक्त होकर वियुक्त होने वाला ही जान सकता है।' वस्तुतः यहाँ ठाकुर ने संयोग के बाद वियोग की व्यथा का ही नहीं, वरन वियोग के बाद संयोग की व्यथा की ओर भी संकेत किया है। वियोग के बाद संयोग में भी हृदय प्रेम की पीड़ा से परिपूर्ण होता है। घनानन्द के उक्त उदाहरण में इसी प्रकार के मिलन की ओर संकेत। वियोग के उपरान्त संयोग की मनोदशा के लिए एक उदाहरण है :

'उर-गति ब्यौरिबे कौं सुन्दर सुजान जू को,
लाख-लाख बिधि सौं मिलन अभिलाखियै।
बातैं रिस-रस-भीनी कसि, गसि गाँस झीनी,
बीनि बीनि आछी भाँति पाँति रचि राखियै।

भाग जागैं जो कहूँ बिलोकैं घनआनंद तौ,
ता छिन की छाकनि के लोचन ही साखियै।
भूलै सुधि सातौ दसा-बिबस गिरत गातौ,
रीझि बावरे ह्वै तब और कछू भाखियै।।'
—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० २२/६७

विरहिणी प्रिय-मिलन के लिए अनेक प्रकार की अभिलाषाएँ कर रही है। वह सोच रही है कि प्रिय के आगमन पर हृदय की गुत्थियों को उसके सामने खोलेगी। इसके लिए उसने रोष और प्रेम से मिश्रित अनेक बातों को चुन-चुनकर नाराजगी के झीने परदे में अच्छी प्रकार सजाकर प्रकट करने के लिए तैयार कर रखा है। विरही की स्वाभाविक इच्छा होती है कि प्रिय के मिलने पर वह अपनी व्यथा को उसके सम्मुख रखे। लेकिन उसके मिलने पर प्रायः इस सम्बन्ध में सोची गई सारी बातें भूल जाती हैं। क्योंकि प्रियमिलन से उत्पन्न प्रेमोन्माद में पूर्व-स्मृतियाँ जवाब दे जाती हैं। यहाँ भी विरहिणी भाग्यवश (कभी-कभार) जब प्रिय को देखती है तो उसका शरीर पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, मन और बुद्धि (सातों दसा) की स्थिति से शून्य होकर इस प्रकार बेसुध हो जाता है कि प्रिय के सम्मुख कुछ और ही बातें निकल पड़ती हैं। प्रेम में विह्वलता की यह स्थिति अत्यन्त स्वाभाविक है। लेकिन इस विह्वलता के कारण घनानन्द की विरहिणी प्रिय-आगमन पर किए जाने वाले सामान्य आचरणों को भी प्रायः भूल जाती है। काव्य शास्त्रीय परम्परा में प्रिय के आगमन पर अवसाद के वर्णन को साहित्याचार्यों ने वर्जित माना है। लेकिन घनानन्द में मिलन-प्रसंगों में भी प्रायः एक विशेष प्रकार की पीड़ा या अवसाद की मनोदशा का चित्रण मिलता है। इसे एक उदाहरण द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता है :

'लहौं जान पिया लखि लाखन प्रान, पै बारिबे की अभिलाष मरौं।
सु कहौं किहि भाँति अनोखियै पीर, अधीर ह्वै नैननि नीर भरौं।
घनआनन्द कीजै विचार कहा, महारंक लौं सोच-संकोच ररौं।
चित-चोपन चाह के चौचंद में हहराय हिराय कै हारि परौं।।'
—घनाआनन्द ग्रंथावली, पृ० २६/७६

विरहिणी-प्रिय-दर्शन से लाखों प्राणों की उपलब्धि जैसा अनुभव करती है। किन्तु अपने प्राणों को उस पर न्यौछावर करने की तीव्र अभिलाषा के अपूर्ण रहने पर दुखी होती रहती है। इस अनिर्वचनीय अनोखी पीड़ा से अधीर होकर वह निरंतर अश्रु प्रवाहित करती रहती है। वस्तुतः मिलन-वेदना की इस अनोखी पीड़ा के अश्रु प्रकारान्तर से आनन्दाश्रु ही हैं, जो मिलनोचित आचार के विपरीत नहीं कहे जा सकते। हृदयगत तीव्र आकांक्षाओं के हाहाकार में नायिका अपनी सुध-बुध

खो कर ऐसा करती है। अतः उसके रुदन, हाहाकार, सुधि-बुधि खोने आदि की क्रियाओं से किसी प्रकार के अपशकुन या अनाचरण की अभिव्यक्ति नहीं होती। सब मिलाकर यहाँ उसका अभिलाषाधिक्य और प्रिय की अनुपलब्धता की भावना ही प्रकट हुई है। वियोग के उपरान्त प्रिय-दर्शन पर प्रायः इस प्रकार की मनोदशा का चित्रण घनानन्द ने किया है :

'जौ कहूँ जान लखैं घनआनन्द तौ तन नेकु न औसर पावत।
कौन बियोग-भरे अँसुवा, जु संयोग में आ गेई देखन धावत।।'
—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ७०/२१४

नायिका दैववश प्रिय के दिखाई देने पर भी प्रिय को भर आँख देख नहीं पाती। इस अवसर पर आँसू (आनन्दाश्रु) बाधा बनकर प्रिय को देखने का मार्ग अवरुद्ध कर देते हैं। पता नहीं किस वियोग से भरे हुए ये आँसू संयोग काल में प्रिय को पहले ही देख लेना चाहते हैं। वास्तविकता यह है कि आँखों में अश्रु आ जाने पर कुछ दिखाई नहीं देता। इसलिए संयोग काल में भी नायिका प्रिय को देख नहीं पाती। वस्तुतः यह दशा संयोग काल की है। मिलनोपरान्त तो स्थिति और अधिक करुणाजनक हो जाती है :

सपने की संपति लौं भई है मलोलेमई,
मीत कौ मिलन-मोद जानौं न कहाँ गयौ।

राखे आप ऊपर सुजान घनआनन्द पै,
पह के फटत क्यौं रे हिये फटि नाँ गयौ।।
—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० २३/६८

घनानन्द के यहाँ प्रिय-मिलन स्वप्न की भाँति होता है। मिलन के बाद प्राप्ति भी स्वप्नवत ही होती है। जिस प्रकार स्वप्न में मिली हुई सम्पत्ति स्वप्न के बाद स्वयं गायब हो जाती है, उसी प्रकार प्रिय के मिलन के बाद उसका मिलन-सुख पता नहीं कहाँ चला जाता है। इसलिए मिलन के बाद वेदना-विह्वल होकर वह कहती है कि 'पौ के फटते ही (सवेरा होते ही), यह हृदय भी फट जाता तो अच्छा था।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि घनानन्द की संयोग-भावना साहित्य में वर्णित संयोग की परम्परा से पर्याप्त भिन्न है। इनके यहाँ वियोग की भाँति ही संयोग भी व्यथामूलक ही है। दर्शनाभिलाषा के आधिक्य, वियोग की समानान्तरता, प्रिय की उदासीनता, अपने जीवनगत विषम प्रेम आदि के कारण इनकी संयोग-भावना प्रायः वियोग संयुक्त है। कहीं-कहीं संयोग के अवसरोचित उल्लास या परम्परागत

क्रिया-कलाप भी इनमें मिल जाते हैं, लेकिन इसे इनकी विशेषता के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। भक्ति से सम्बन्धित अपनी शृंगारिक रचनाओं में कवि ने संयोग का स्थूल तथा विलास प्रधान रूप अवश्य स्वीकार किया है। लौकिक प्रेम की उन्मुक्तता भी वहाँ नहीं मिलती। भक्ति के क्षेत्र में वह एक विशेष धार्मिक सम्प्रदाय की परिपाटी में ही बँध कर चला है। इसलिए मिलन-प्रसंगों में वहाँ वे कोई निजी विशेषता नहीं ले आ पाए हैं। भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में भी अभिलाषा और सौंदर्य का आधिक्य अवश्य है, लेकिन लौकिक संयोग वाली व्यथा यहाँ गायब है। इस तथ्य को उनके पदों में आसानी से देखा जा सकता है :

'रीझि रीझि मुख देखि रहै।
लाल लाड़िली की छबि मोहै चकित भए कछुवै न कहै।
मोय मोय मन खोय जात है रूप गहर की मिति न लहैं।
आनँदघन पिय रसिक-मुकुट मनि भाग निकाई दृगनि चहै।।

—घनआनन्द ग्रंथावली, पद ६०४

यद्यपि पदों में भी शब्दावली प्रायः कवित्त सवैयों की ही है, लेकिन विषम प्रेम के लौकिक पक्ष का वैचित्र्य और लाक्षणिकता यहाँ कम मिलती है। नेत्र यहाँ भी 'रीझ बावरे' हैं, देखने की वैसी ही साध है, मुग्धता और चकित भाव भी है, लेकिन विषमता या उदासीनता जन्य आशंका के अभाव में लौकिक प्रेम की पीर यहाँ नहीं मिलेगी। पदों में संयोग काल की मनोदशाएँ ही अधिक चित्रित है। इसमें उपालम्भ आदि उपस्थित प्रिय को निवेदित हैं, जब कि कवित्त-सवैयों में आत्म निवेदन अनुपस्थित प्रिय को संबोधित है। फलस्वरूप शब्दावली की समानता के बावजूद दोनों में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। इसे समझने के लिए उपालम्भ का एक उदाहरण लिया जा सकता है :

'हौं तुमसों एक बात बूझति हौं, साँची कहौ।
मिले माझ अनमिले से मोहन कैसी भांति रहौ।
उघरें हू अन्तरपट राखत अपने गुननि गहौ।
चोपनि झूमि-झूमि आनँदघन नित नए नेह नहौ।।'

यहाँ भी 'मिले माझ अनमिले', 'उघरे हू अन्तरपट', 'नित नये नेह नहौ' आदि प्रयोगों द्वारा प्रिय के निष्ठुर स्वभाव और उसकी उदासीनता का संकेत हुआ है, लेकिन प्रिय की उपस्थिति के कारण इस उपालम्भ में लौकिक शृंगार का विरोध-वैचित्र्य समाप्त हो जाता है। ये सारे प्रयोग कबित्त-सवैयों के हैं, किन्तु यहाँ इनकी ताजगी और ताप प्रायः समाप्त हो गया है।

८. विरह-भावना

घनानन्द के काव्य का मूल स्वर विरह या 'प्रेम की पीर' है। अपनी इस पीड़ा-परक दृष्टि के कारण ही इन्होंने संयोग में भी वियोग का अनुभव किया है। कवि के समकालीन और उसके काव्य की आन्तरिक प्रकृति के पारखी व्रजनाथ ने अत्यन्त स्पष्टता के साथ इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए लिखा है :

'समुझै कविता घनआनँद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी।'

या

'प्रेम की चोट लगी जिन आँखिन सोई लहै कहा पंडित होय कै।'

केवल काव्य-मर्मज्ञ व्रजनाथ ही नहीं, वरन कवि के मित्र और प्रशंसक महात्मा हित वृन्दावनदास ने भी उसकी मृत्यु पर भाव-विह्वल होकर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उक्त प्रवृत्ति को रेखांकित किया है :

'विरह सौं तायौ तन निवाह्यौ बन सांचो पन,
धन्य आनँदघन मुख गाई सोई करी है।'

इससे स्पष्ट है कि घनानन्द ने केवल विरह-व्यथा की कविता ही नहीं लिखी है, उनका जीवन भी विरह-व्यथा की साक्षात् प्रतिमा बन गया है। 'विरह से संतप्त शरीर और इस भावना के लिए अपने को न्यौछावर कर देने की प्रतिज्ञा का निर्वाह'—इस बात का प्रमाण है कि घनानन्द ने 'जो कुछ मुख से गाया है, वही किया' भी है। इसे और वस्तु परक बनाने के लिए कहा जा सकता है कि 'जो कुछ किया है, वही गाया है।' अतः इनकी 'कथनी और करनी' में एकरूपता मिलती है। इसलिए अधिकांश रीतिबद्ध कवियों की तरह ये प्रेम का नाटक खेलते हुए, उधार के आँसू बहाने वाले न होकर अपनी व्यथा से रोते-कराहते दिखाई देते हैं। इस वास्तविकता को प्रकाशित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है : 'प्रेम की पीर ही लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक...व्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२०)।

घनानन्द के 'प्रेम की पीर' का मूल आधार विषम प्रेम है, जिससे इसमें कुछ ऐसी विशेषताओं का समावेश हो गया है, जो अन्य कवियों से इन्हें भिन्नता प्रदान करती है। आगे इन विशेषताओं को अलग-अलग समझने का प्रयास किया जाएगा।

(क) **विषम प्रेम की पीड़ा**—विरह में विरही का व्यथित होना स्वाभाविक है। इसका सहज रूप है, उभय पक्ष में प्रेम की स्थिति। इसमें भी वियोग जन्य व्यथा होती है, लेकिन एकपक्षीय (विषम) प्रेम की पीड़ा इससे पर्याप्त भिन्न होती है। विषम प्रेम में प्रेमी और प्रिय के मध्य एक विरोध-भाव होता है, जहाँ प्रेमी एकनिष्ठ भाव से प्रेम करता है। लेकिन प्रिय निरंतर उसके प्रति उपेक्षा का भाव प्रकट करता है। प्रेम का यह रूप समाज-स्वीकृत न होने के कारण प्रेमी को एक विचित्र स्थिति में डाल देता है। इस स्थिति को कुछ उदाहरणों के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है :

'तपति उसास औधि रूधियै कहाँ लौं दैया,
          बात बूझें सैननि ही उतर उचारियै।
उड़ि चल्यौ रंग कैसे राखियै कलंकी मुख,
          अनलेखें कहा लौं न घूंघट उघारियै॥'

—घनआनन्द कबित्त, ५१

एक तरफ प्रिय-आगमन की अवधि की (झूठी) दिलासा में अपने प्राणों को धैर्य दिलाना और दूसरी ओर लोगों के प्रश्नों का संकेतों से उत्तर देना कब तक संभव है। विरहिणी की दयनीय स्थिति को देखकर लोग पूछते हैं कि तुमने यह क्या दशा बना रखी है! इस पर उसे सही उत्तर न देकर टाल-मटोल करना पड़ता है। लेकिन इस स्थिति को बहुत दिनों तक छिपाया नहीं जा सकता। विरह के कारण अपने विवर्ण होते हुए मुख को वह लोगों की दृष्टि से अधिक समय तक छिपा नहीं सकती। घनानन्द की विरहिणी को वैसे लोकापवाद की अधिक चिन्ता नहीं है। परन्तु प्रिय की निष्ठुरता के संदर्भ में उसके लिए लोकनिन्दा असह्य बन जाती है। सामान्य स्थिति में लोकापवाद का सामना करने का उसमें अपूर्व साहस है :

'बिष सी कथानि मानि सुधा पान करौं जान,
          जीवन निधान ह्वै बिसासी मारि मति रे।
जाहि जो भजै सो ताहि तजै घनआनँद क्यों,
          हति के हितूनि कहौ काहू पाई पति रे॥'

—घनआनन्द कबित्त, ६०

यहाँ विषाक्त लोकापवाद को अमृत समझकर पीने की बात से स्पष्ट है कि विरहिणी की वास्तविक पीड़ा प्रिय की उपेक्षा को लेकर है। वह जिन परिस्थितियों में जीवन काट रही है, उसमें एकतरफा प्रेम की पीड़ा ही प्रमुख है। जब कभी-कभार कोई आत्मीय या पूर्ण विश्वसनीय इस व्यथा को सुनने के लिए आ जाता है, तो यह शतधा प्रवाहित होकर फूट निकलती है :

'रैन दिना घुटिबो करैं प्रान झरैं आँखियाँ दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं कसकै सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी।
चौचँद-चार चबाइन के चहुँओर मचैं, विरचैं करि हाँसी।
यौं मरियै भरियै कहि क्यौं सु परैं जिन कोऊ सनेह की फांसी।।'

—घनआनन्द कवित्त, ३६५

प्राणों का रात-दिन घुटते रहना, दुखियारी आँखों का निरंतर अश्रु-प्रवाह, प्रिय की स्मृति का पसलियों में फाँसदार काँटे की तरह कसकना आदि घोर शारीरिक-मानसिक यातना के बीच चारों ओर बदनामी और जगहँसाई में जीवन बिताना कितना कठिन है। इस प्रकार खींचतान कर जीवन के दिन काटने की अनिर्वचनीय व्यथा से आकुल विरहिणी का यह कह उठना कि 'कोई ऐसे प्रेम की फांसी में न पड़े'—उसकी आंतरिक मनोदशा को मूर्त रूप दे देता है। इसके साथ ही जब प्रेमी को यह पूर्ण विश्वास हो कि प्रिय उसे नहीं चाहता या कभी भी उसके अनुकूल नहीं हो सकता तब वेदना और अधिक दारुण हो जाती है :

'घनआनँद प्यारे सुजान ! सुनौ जिहि भाँतिन हौं दुख-सूल सहौं।
नहि आवनि-औधि न रावरी आस इते पर एक सी बाट चहौं।
यह देखि अकारन मेरी दसा कोउ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं।
जिय नेकु बिचारि कै देहु बताय हहा पिय ! दूरि ते पायँ गहौं।।'

—घनआनन्द कवित्त, २७३

वस्तुतः यह स्थिति अत्यधिक दारुण है। प्रेम दो हृदयों का अत्यन्त रागात्मक सम्बन्ध होता है। एक पक्ष की किंचित शिथिलता भी इसके लिए घातक हो सकती है। लेकिन यहाँ एक पक्ष में मात्र शिथिलता ही नहीं, घोर उपेक्षा भी है। विरहिणी अनुपस्थित प्रिय को संबोधित करते हुए कहती है कि 'न तो आपके आने की कोई निश्चित अवधि है और न ही इस प्रकार की उम्मीद ही की जा सकती है कि आप आएँगे। फिर भी मैं निरन्तर आपके आने का मार्ग देख रही हूँ। मेरी इस अकारण प्रतीक्षा को देखकर कोई प्रश्न करेगा तो मैं उसे उत्तर क्या दूँ ? मैं दूर से ही आपके पाँव पड़ती हूँ कि जरा सोचकर इसका उत्तर बता दें।' वस्तुतः यह एक विलक्षण वेदना की मनोदशा है, जो मूलतः एकतरफा प्रेम के कारण है। उभयनिष्ठ प्रेम में भी विरही को वेदना होती है, लेकिन वह इस आशा और विश्वास के सहारे जीवन काटता है कि प्रिय कभी आएगा। इसके साथ ही विरही इसमें दूसरों को सहजभाव से अपना सहभागी बना सकता है, जिससे अपनी व्यथा कहकर हृदय के भार को हलका कर सकता है। विषम प्रेम की अवस्था में वैसा कर पाना भी संभव नहीं। इस विषमता के कारण प्रेमी का जीवन पीड़ा का जीवन बन जाता है। इस वैषम्यजन्य वेदना के अटपटेपन को घनानन्द ने अत्यन्त

मर्मस्पर्शी ढंग से वाणी प्रदान की है :

'अंतर उदेग-दाह, आँखिन प्रवाह-आँसू,
देखी अटपटी चाह भीगनि-दहनि है।
सोयबो न जागिबो,हो हँसिबो न रोयबो हू,
खोय खोय आपही मैं चेटक लहनि है।
जान प्यारे प्राननि बसत पै अनन्दघन,
बिरह-विषम-दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन-मरन, जीव-मीच बिना बन्यौ आनि
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है।।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० ६३/१९६

विषम प्रेम की व्यथा के लिए कवि ने प्रायः विरोध मूलक विलक्षण क्रियाओं का सहारा लिया है। आग और जल, भीगना और जलना, जीना और मरना आदि परस्पर विरोधी वस्तुएँ तथा क्रियाएँ हैं, जिन्हें विरहिणी एक साथ झेल रही है। कवि ने 'जीवन के बिना जीने और मृत्यु के बिना मरने' के उल्लेख द्वारा 'नेही की रहनि' अर्थात विषम प्रेम में ग्रस्त प्रेमी की स्थिति को अत्यन्त मार्मिक ढंग से उजागर किया है। 'बिरह-बिषम-दसा मूक लौं कहनि है'—के द्वारा इसकी अनिर्वचनीयता को उद्घाटित किया गया है। इस सारे व्यापार में अपने को पूर्ण रूप से खो देने के बाद जो मिलता है, वह 'चेटक लहनि' है—अर्थात् जादू की सी प्राप्ति है, जो अंततः झूठी और निरर्थक उपलब्धि के रूप में दिखाई देती है। वस्तुतः यह विषमता पूर्णतः फारसी प्रेम पद्धति जैसी रही है। आरंभ में संयोग और परस्पर विश्वास के कारण इसकी वियोग-वेदना में एक भिन्न प्रकार की तीव्रता मिलती है, जिसके केन्द्र में प्रिय की परवर्ती निष्ठुरता है। अतः इसमें प्रिय-पक्ष से किया गया विश्वासघात वेदना का एक प्रमुख कारण बन गया है :

'कहियै सु कहा रहियै गहि मौन, अरी सजनी उन जैसी करी।
परतीति दै कीनी अनीति महा, बिष दीनौ दिखाय मिठास डरी।
इत काहू सो मेल रह्यौ न कछू, उत खेल सी ह्वै सब बात टरी।
घनआनँद जान सयान की खान, भुराई हमारेई पैंडे परी।।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० ८१/२४९

यहाँ विरहिणी व्यथा से विगलित होकर कह रही है कि 'हे सखी ! उन्होंने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया, उसे किस प्रकार कहा जाए ! इसके लिए तो मौन धारण कर लेना ही अच्छा है। पहले तो उन्होंने मेरे हृदय में विश्वास पैदा किया और फिर ऐसे धोखा दिया, जैसे कोई मीठी डली दिखाकर बुलाए तथा पहुँचने

पर विष दे दे। उनके विश्वास के नाते इधर मैंने संसार के अन्य लोगों से नाता तोड़ लिया और उधर सारी बातें खेल की तरह हल्की-फुल्की होकर उपेक्षित हो गईं।' यहाँ प्रेमी के भोलेपन और प्रिय के विश्वासघात के माध्यम से कवि ने दोनों के स्वभावगत-वैषम्य को प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त विवेचन के बाद हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि घनानन्द की विरह-भावना की प्रकृति उभयनिष्ठ प्रेम से भिन्न अनुभय निष्ठ प्रेम पर आधारित होने के कारण अपने युग के अन्यान्य कवियों से पर्याप्त भिन्न है। इसमें शृंगार की अपेक्षा करुण की अधिक व्यंजना मिलती है।

(ख) **'मौन मधि पुकार'**—वैसे मानसिक वेदना अपने सामान्य रूप में भी अनिर्वचनीय होती है, जिसकी ओर कवियों ने प्रायः संकेत किया है। लेकिन विषम प्रेम की वेदना के रूप में घनानन्द ने उसकी विलक्षणता की ओर भी संकेत किया है। इस विलक्षणता को उन्होंने 'मौन मधि पुकार' की संज्ञा दी है। पीछे अभी हमने देख लिया है कि घनानन्द के लिए 'विरह-बिषम-दसा मूम लौं कहनि है।' लेकिन बात यहीं नहीं समाप्त हो जाती। यदि समझने वाला समझना चाहे तो गूँगे का सांकेतिक कथन भी समझ सकता है। यहाँ तो स्थिति और अधिक उलझी हुई है। प्रिय-पक्ष से उपेक्षा और आनाकानी प्रेमी की स्थिति को अत्यन्त दैनीय बना देती है :

'इतै अनदेखें देखिबेई जोग दशा भई,
तैं तो आनाकानी ही सौं बाँध्यौ दीठि तार है।
तेरें बहरावनि रुई है कान बीच, हाय,
विरही विचारनि की मौन मैं पुकार है।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० १२२/३६६

इधर 'बिना देखे देखने योग्य (दयनीय) स्थिति' और 'उधर प्रिय द्वारा न देखने का हठ'—वेदना की भीषणता को अत्यन्त करुण बना देता है। इससे स्पष्ट है कि घनानन्द विषम 'प्रेम की पीर' को अनिर्वचनीय मानकर उसकी सांकेतिक अभिव्यक्ति की ओर प्रवृत्त हुए हैं। इसे व्यक्त करने के लिए उन्होंने 'प्रिय के कानों में बहानेबाजी की रूई' और 'विरही की मौन में पुकार' का संकेत दिया है। यहाँ एक तरफ प्रिय व्यथा को सुनना नहीं चाहता तो दूसरी ओर प्रेमी उसे सुनाकर अपनी ओर आकृष्ट करने के स्थान पर मौन की साधना का व्रत लेता है। वैसे गहराई से देखा जाए तो आंतरिक व्यथा की वास्तविक स्थिति मौन में ही है, जिसे घनानन्द ने अपने काव्य में एक विशिष्ट अवधारणा का रूप दिया है :

'मौन मिहीं बात है समझि कहि जानै जान,
अमी काहू भाँति को अचंभै भरि प्यावई।

कहूँ कौन मानै, पहचानै कान नैन जाके,
बात की भिदनि मोंहि मारि-मारि ज्यावई ॥'
—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० १२६/४२३

मौन अत्यन्त रहस्यपूर्ण (महीन) कथन प्रणाली है, जिसे कोई बहुत समझ-दार या समझने की इच्छा रखने वाला ही जान सकता है। एक तो इसे कहा नहीं जा सकता और दूसरे यदि किसी प्रकार कहा भी जाए तो कोई मानने के लिए तैयार नहीं होगा। क्योंकि इसे वही पहचान सकता है, जिसके नेत्रों में ही कान हों, अर्थात् जो देखकर ही सारी व्यथा का अनुभव कर सके। इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए कवि ने लिखा है :

'पहचानै हरि कौन, मो से अन पहचान कौं।
न्यौं पुकार मधि-मौन, कृपा-कान-मधि नैन ज्यौं ॥'
—घनआनन्द कबित्त, २२

नेत्रों के मध्य कृपा-रूपी कान के विना 'मौन के मध्य स्थित पुकार' को नहीं सुना जा सकता। इसलिए विरहिणी ईश्वर से निवेदन करती है कि मेरी मौन में छिपी हुई पुकार को केवल आप ही देखकर सुन और समझ सकते हैं। क्यों कि आप ही ऐसे हैं, जिनके नेत्रों में कृपा के कान हैं। लेकिन प्रिय की निष्ठुरता के संदर्भ में कृपा की कामना घनानन्द को अलौकिक की ओर ले गई है—इसे तो हम आगे यथास्थान देखेंगे, यहाँ इतना ही समझ लेना पर्याप्त है कि 'मौन' इनके लिए एक साधना के साथ ही अभिव्यक्ति का साधन भी है :

'मौनहू सों देखिहौं, कितेक पन पालिहौ जू,
कूक भरी मूकता बुलाय आप वोलि है।

रुई दिएँ रहौगे कहा लौं बहराइबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलि है ॥'
—घनआनन्द कबित्त, १०४

यहाँ मौन की क्षमता पर एक अपूर्व धैर्य और अडिग विश्वास प्रकट हुआ है। विरहिणी निष्ठुर प्रिय को चुनौती देते हुए कह रही है कि 'देखना है कि तुम अपने न सुनने की प्रतिज्ञा पर कब तक अटल रहते-हो। मेरी यह पुकार भरी मौन (कूक भरी मूकता) तुम्हारी चुप्पी को तोड़कर ही दम लेगी।' इस कूक भरी मूकता का कारण प्रिय का उपेक्षा भाव ही है :

'सुधि करें भूल की सुरति जब आय जाए,
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कों ॥'
—घनआनन्द कबित्त, २००

'प्रिय की उपेक्षा (भूल) की याद करने पर जब उसकी स्मृति सताने लगती है, तब मैं अपनी सुध-बुध खोकर मौन में कूकने लगती हूँ।' मौन धारण कर कूकना यहाँ मौन के माध्यम से अपनी व्यथा का निवेदन करना है। 'मौन बखान' के रूप में घनानन्द ने 'कूकभरी मूकता' के महत्व को इस प्रकार उद्‌घाटित किया है :

'आँखिन मूँदिबो बात दिखावत, सोवनि जागनि बातहि पेखि लै।
बात-सरूप अनूप अरूप है, भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै।
बात की बात सुबात बिचारिबो, सूछमता सब ठौर बिसेखि लै।
नैननि-काननि-बीच बसे, घनआनँद मौन-बखान सु देखि लै॥'

—घनानन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १३०/४२४

यहाँ कवि ने नेत्रों और कानों के मध्य स्थित 'मौन के बखान' में वाणी (बात) की वास्तविक महत्ता का उद्‌घाटन किया है। वाणी के द्वारा उपेक्षा-भाव (आँख मूदना) का अच्छी तरह से उद्‌घाटन किया जा सकता है। इसके द्वारा अजान बन कर जानते रहने और जानबूझ कर अजान बने रहने की स्थिति का भी उद्‌घाटन किया जा सकता है। वाणी का वास्तविक स्वरूप अनोखा और अत्यन्त सूक्ष्म (अरूप) है। इसकी महत्ता के संबंध में हमें किसी प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिए। क्योंकि इसमें अलक्ष्य (ब्रह्म) को भी लक्षित करने की क्षमता होती है। अपनी सूक्ष्म शक्ति के कारण वाणी की क्षमता सर्वव्यापी है। तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म और अनिवर्चनीय तथ्यों को भी वाणी द्वारा उद्‌घाटित किया जा सकता है। कहना न होगा कि घनानन्द ने अपने काव्य में इस क्षमता का अत्यन्त कुशलता के साथ उपयोग किया है। अनिर्वचनीय स्थितियों की सांकेतिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से निम्नलिखित उदाहरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है :

गतिनि तिहारी देखि थकनि मैं चली जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जौ परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है।
हाय यह पीर प्यारे! कौन सुनै कासों कहौं,
सहौं घनआनन्द क्यौं अन्तर अरति है।
भूलनि चिन्हारि दोऊ हैं न हो हमारें या ते,
बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है।"

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १०४/३२६

अनिर्वचनीयता की अभिव्यक्ति में वाणी वक्रता की किस सीमा तक जाकर अपनी क्षमता प्रकट कर सकती है—उक्त कविता में इसका अद्‌भुत प्रमाण प्रस्तुत

हुआ है। 'गति (आदत) देखकर थकना और थकने में भी चलते रहना'—प्रिय की निष्ठुर करतूत को देखते हुए दुर्दशा में जीवन व्यतीत करने का 'मौन-बखान' है। 'थिर और चर दसा' अर्थात् रुकने और चलते रहने की स्थिति का अस्पष्ट बने रहना, (ढकी उघरति) चेतनाशून्यता की द्योतक है। विरहिणी का यह कहना कि 'चाहे किसी को चैन पड़ता भी हो (कल जौ परति होय), लेकिन मुझे तो मालूम ही नहीं कि चैन पड़ना किसे कहते हैं।' इस प्रकार वह ऐसी स्थिति (परनि) में पड़ गई है कि उसे पड़ी हुई विपत्ति (परति) का पता ही नहीं लग पाता। इस आन्तरिक पीड़ा को न किसी से कहा ही जा सकता है और न कोई सुन ही सकता है। विस्मृति और स्मृति (भूलनि-चिन्हारि) के साथ न होने से अर्थात् विस्मरण और स्मरण—दोनों की दशा से शून्य होने के कारण प्रिय की विस्मृति द्वारा आत्मविस्मृति के गर्त में डाला जाना विरहिणी की अत्यधिक व्याकुलता का परिचायक है। वस्तुतः इस प्रकार की सांकेतिक अभिव्यक्ति भी 'मौन-बखान' का ही एक रूप है, जिसे घनानन्द की रचनाओं में सर्वत्र देखा जा सकता है।

(ग) **आत्मभर्त्सना**— एकतरफा प्रेम, प्रिय की गुरुता और अपनी लघुता आदि के कारण घनानन्द की विरहिणी में कहीं-कहीं आत्मग्लानि की भावना भी दिखाई देती है, जिससे पीड़ित होकर वह आत्मभर्त्सना की ओर उन्मुख होती है। प्रथम-दर्शनजन्य और रूपासक्ति की प्रधानता होने के कारण इनके यहाँ प्रेम के अन्तर्गत नेत्र और हृदय—दोनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है। सारे प्रेम-प्रपंच की जड़ भी ये ही दोनों हैं। रूप लोभी नेत्र हृदय को गिरवी रख देते हैं और हृदय भी बिना कुछ सोचे-विचारे इनके चक्कर में आ जाता है। वियोग की स्थिति में कवि ने नेत्रों की व्याकुलता और मन, जी, प्राण आदि के रूप में हृदय की विवशता का सर्वाधिक चित्रण किया है। विरही जब खीझ की दशा में होता है तो अपने नेत्रों या हृदय को ही सबसे अधिक कोसता है। रूप लोलुप नेत्रों की काली करतूत का बखान करते हुए विरहिणी कहती है :

'जान के रूप लुभाय कै नैननि, बेंचि करी अधबीच ही लौंडी।
फैलि गयी घर-बाहर बात, सुनीकैं भई इन काज कनौडी।
क्यौं करि थाह लहै घनआनँद, चाह नदी तट ही अति औंडी।
हाय दई न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंडी॥'

—घनआनन्द कबित्त, ३५

'इन नेत्रों ने प्रिय सुजान के रूप पर लुब्ध होकर सौदेबाजी के पूर्ण होने के पहले ही मुझे उसके हाथों बेच कर दासी बना दिया। यह खबर चारों ओर फैल गई, जिसके कारण व्यर्थ ही मुझे अच्छी तरह बदनाम होना पड़ा। हाय विधाता; सारे संसार में मेरे प्रेम की मुनादी की जा रही है और उधर विश्वासघाती प्रिय

हैं, जो कुछ सुनता ही नहीं। वस्तुतः इस वेदना के पीछे गहन 'दिखसाध' ही है, जो नेत्रों को प्राय: व्याकुल किए रहती है। विरहिणी कभी-कभार इन नेत्रों की व्याकुलता के माध्यम से भी अपनी व्यथा को उद्घाटित करती है :

'घेर घबरानी उबरानी ही रहति, घन-
आनँद आरति-राती साधनि मरति हैं।

देखियै दसा असाध अँखिया निपेटिनि की,
भसमी त्रिथा पै नित लंघन करति हैं।
—घनआनन्द कवित्त, २६

यहाँ विरहिणी ने 'दिखसाध' के भयंकर रोग से ग्रस्त अपने नेत्रों की विलक्षण व्यथा की ओर संकेत किया है। एक ओर भस्मक रोग (भसमी विथा) से ग्रस्त पेट्टू (निपेटिनि) आँखें और दूसरी ओर उनका नित्य लंघन-कार्य (उपवास) ये दोनों परस्पर विपरीत स्थितियाँ हैं। आयुर्विज्ञान में भस्मक एक ऐसी बीमारी मानी गई है, जिसमें रोगी जो कुछ भी खाता है, सब उसके पेट में भस्म हो जाता है और भूख ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। उधर आँखें स्वभावतः पेट्टू (अधिक खाने वाली) हैं, अर्थात् प्रिय को चाहे जितना भी देखें, कभी साध पूरी नहीं होती। लेकिन इधर प्रिय की अनुपस्थिति के कारण दर्शन से वंचित होकर उन्हें नित्य लंघन (उपवास) करना पड़ रहा है। इस प्रकार कवि ने नेत्रों की व्याकुलता को अत्यन्त कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है।

रूप-लोभी आँखों की भाँति ही, विरहिणी रस लोलुप मन या प्राणों को भी कोसती है। सारी वेदना की जड़ वह इन्हें ही मानती है। प्रिय की अनुपस्थिति में उनका रहना उसे अनुचित प्रतीत होता है :

'क्यौं धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के,
गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले।'
—घनआनन्द कवित्त, ३१

'प्राणों पर विजय प्राप्त कर प्रिय के जाते समय ये निगोड़े (गाली) प्राण उनके साथ ही क्यों नहीं चले गये'—इस कथन में प्राणों के प्रति एक विशेष प्रकार की खीझ प्रकट हुई है। व्याकुलता में कभी-कभी तो स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि विरहिणी मन को प्रताड़ित करते हुए, उसकी यातना में ही किंचित संतोष का अनुभव करने लगती है :

'बिष लै बिसार्‌यौ तन, कै बिसासी आपचार्‌यौ,
जान्यौ हुतौ मन तैं सनेह कछु खेल सो।

अब ताकी ज्वाल मैं पजरिबो रे भली भाँति,
नीके आहि, असह उदेग-दुख सेल सो।

रुचि ही के राजा जान प्यारे यौं आनन्दघन,
होत कहा हेरे रंक, मान लीनौ मेल सौ ॥'
—घनआनन्द कबित्त, ३७

मन को प्रताड़ित करती हुई विरहिणी कह रही है कि 'ऐ विश्वासघाती मन ! अपनी स्वेच्छाचारिता के कारण प्रेम में विरह के विष को ग्रहण कर तुमने सारे शरीर को विषाक्त कर दिया। लगता है कि तुमने प्रेम को कुछ खेल जैसा समझ रखा था।' आगे वह अत्यन्त कटुता से व्यंग्य करती हुई कहती है कि 'अच्छा हुआ, तुम्हें अपनी करनी का फल मिल गया। अब असह्य व्यथा के उद्वेग रूपी बरछे से भिद कर विरह की ज्वाला में अच्छी तरह जलो। तुम्हारी समझ में यह बात क्यों नहीं आई कि प्रिय सुजान तो अपनी पसन्द के राजा, अर्थात् परम स्वेच्छाचारी हैं। तुम जैसे रंक की तरफ जरा सा देख लेने से उनका क्या बिगड़ता है। लेकिन तुमने इस देखने को ही प्रेम मान लिया।' इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि विरहिणी अपनी पीड़ा में भी एक प्रकार से आत्मघाती आनन्द ले रही है। इस तथ्य को और अच्छी तरह समझने के लिए एक दूसरा उदाहरण भी लिया जा सकता है :

'सूझै नहिं सुरझ उरझि नेह गुरझनि,
मुरझि मुरझि निसदिन डावाँडोल है।

आगे न बिचार्‌यौ अब पाछें पछताएँ कहा,
मान मेरे जियरा बनी को कैसो मोल है ॥'
—घनआनन्द कबित्त, १६३

अपने मन को सम्बोधित करती हुई नायिका कह रही है कि 'प्रेम की अत्यन्त उलझनपूर्ण गुत्थी में फँसकर तुम्हें उससे मुक्त होने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। विरह के आघात से मूच्छित होकर तुम्हें निरंतर व्याकुलता में रहना पड़ रहा है। इस सम्बन्ध में प्रेम करने से पूर्व तो तुमने कोई विचार किया नहीं, अब पश्चा-ताप करने का कोई लाभ नहीं।' अंत में वह अत्यन्त कटु व्यंग्य करती हुई कहती है कि 'ऐ मेरे मन ! अब तुम मान लो कि इस व्यापार में तुम्हें कैसा मोल चुकाना पड़ा। अर्थात् अपना सब कुछ चुका देने के बाद तुम्हें मिला क्या ? वस्तुतः आँखों और मन को इस प्रकार कोसना, प्रकारान्तर से आत्मभर्त्सना ही है

घनानन्द की विरहिणी में पीड़ा के प्रति एक विशेष प्रकार का लगाव भी दिखाई देता है। अतः रात-दिन कष्ट सहन करते हुए भी प्राण पीड़ा से मुँह नहीं मोड़ते :

'उठि न सकत, ससकत नैन-बान-बिधे,
इतेहू पै विषम विषाद-जुर लू बरै।
सूरे पन-पूरे हेत-खेत तें हटैं न कहूँ,
प्रीति बोझ बापुरे भये हैं दवि कूबरे।

नेही दुखियानि की यहै गति अनन्दघन,
चिन्ता मुरझानि सहैं न्याय रहैं दूबरे।'
—घनआनन्द कबित्त, ४९

'एक ओर नेत्रों की चोट से घायल प्राण पीड़ा के कारण विह्वल होकर सिसकते रहते हैं, हिल-डोल नहीं सकते और दूसरी ओर विरह-ज्वर भीषण लू की तरह जलता रहता है। फिर भी अपनी प्रतिज्ञा के पक्के ये प्राण प्रेम के रण-क्षेत्र से मुंह नहीं मोड़ते। प्रेम के बोझ से दबकर ये बेचारे कुबड़े हो गए हैं, अर्थात् प्रेम ने इन प्राणों की कमर तोड़ दी है।' इतना सब झेलते हुए भी विरहिणी यह मानकर संतोष कर लेती है कि 'चिन्ता से सूखकर दुर्बल बने रहना दुखी प्रेमियों के लिए न्यायोचित ही है।' इस प्रकार घनानन्द के यहाँ 'नेहीं की रहनि' एक विचित्र जीवन है, जो सामान्य जीवन से सर्वथा भिन्न है। 'प्रेम की पीर' के सन्दर्भ में हमने इस तथ्य को अच्छी तरह देख लिया है कि विरहिणी पीड़ा में एक प्रकार का आत्मघाती आनन्द लेती है। यह सब आत्मभर्त्सना का ही एक रूप है।

(घ) **प्रिय की मंगल कामना**—घनानन्द ने प्रेम को अत्यन्त उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया है। यह उदात्तता प्रेमी की निष्कामता के माध्यम से ले आई गई है। अपने को महत्व न देकर प्रिय को महान् मानने के कारण विरहिणी अपने कष्टों का कारण स्वयं को मानती है। इसीलिए वह आत्मभर्त्सना की ओर उन्मुख हुई है। लेकिन आत्मभर्त्सना के बावजूद भी वह प्रिय का अनिष्ट या अमंगल नहीं चाहती। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण है :

'मन भायौ वियोग मैं जारिबो, जौ तो तिहारी सौं नीके जरैऽरु भरैं।
पै तुम्हैं मति कोऊ कहौ हित-हीन सु या दुख-बीच अमीच भरैं॥'
—घनआनन्द ग्रंथावली, पृष्ठ १०२/३१९

विरहिणी को वियोग की ज्वाला में जलते हुए जीवन के दिन काटने में विशेष चिन्ता नहीं है। उसकी वास्तविक पीड़ा इस बात को लेकर है कि लोग प्रिय को प्रेमहीन न कहने लगें। अपनी वेदना के लिए वह अपने भाग्य को ही दोषी ठहराती है, लेकिन इसके मूल में प्रिय की निष्ठुरता भी है। उसके मन में आशंका है कि कहीं उसकी वेदना के कारण प्रिय का अनिष्ट न हो जाए। अतः वह इस लोक-विश्वास की ओर प्रिय का ध्यान आकृष्ट करती है :

'सुनी है कै नाहीं यह प्रगट कहावति जू
काहू कलपाय है सु कैसें कलपाय है।'

—घनआनन्द कबित्त, ७

इसमें प्रिय के प्रति क्षोभ नहीं, वरन् उसके अमंगल का भय अधिक है। वह अपने मन को तो यह कहकर सांत्वना दे लेती है कि—

'तिन्हैं यों सिराति छाती तोहि वै लगति तातो,
तेरे बाँटै आयो है अँगारनि पै लोटिबो।'

—घनआनन्द कबित्त, ५६

लेकिन अपनी वेदना के लिए अपना भाग्य-दोष मानते हुए भी उसे इस बात की चिन्ता है कि उसके प्राणांत के बाद लोग प्रिय को हत्यारा न समझ बैठें :

'हेत-खेत-धूरि चूर-चूर ह्वै मिलैगो, तब,
चलैगी कहानी घनआनँद तिहारे की।'

—घनआनन्द कबित्त, ५३

अर्थात् मेरी मृत्यु के बाद लोग तुम्हारी करनी की निन्दा करेंगे। वस्तुतः प्रेम की चरम स्थिति पर पहुँचकर प्रेमी को कुछ भी प्राप्त करने की कामना नहीं रह जाती। स्वयं दुःख सहन कर भी वह प्रिय की निरंतर मंगल-कामना करता रहता है। घनानन्द का प्रेम भी निष्कामता के इस उत्कर्ष-बिन्दु तक पहुँचा हुआ है। इसे निम्नलिखित उदाहरण के माध्यम से अच्छी तरह समझा जा सकता है :

'इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि, कैसे उराहनों दीजियै जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई, जु कछू मन भाई सुकीजियै जू।
घनआनंद जीवन-प्रान सुजान, तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ तुम्हें चाड़ कहा, पै असीस हमारियौ लीजियै जू॥'

—घनआनन्द कबित्त, ६८

यहाँ तो उलाहना देने की भी स्थिति नहीं है। क्योंकि विधाता द्वारा किए गए बँटवारे में प्रेमी के हिस्से में निरन्तर याद करते रहना और प्रिय के हिस्से में सहज रूप से भूलना आया है। विरहिणी को जो कुछ भी मिला है, उसे स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर लिया है और अपने को प्रिय के प्रति पूर्णतः समर्पित कर दिया है। लेकिन प्रिय को वह इतना अवश्य बता देना चाहती है कि 'तुम मेरे प्राणों के प्राण हो और तुम्हारी ही चर्चा में मैं जी रही हूँ, अर्थात् मेरे जीवन का अन्य कोई औचित्य नहीं है।' अन्त में उसका यह कथन कि यद्यपि तुम्हें जरूरत नहीं है, फिर

भी 'निरंतर कुशलपूर्वक रहो—मेरे इस आशीर्वाद को भी स्वीकार करो।' प्रिय निष्ठुर और विश्वासघाती है—इस विश्वास के बावजूद विरही के प्राण केवल इसलिए नहीं निकल पा रहे हैं कि प्रिय का कुशल-समाचार मिल जाए तो वे संतोषपूर्वक निकलें :

'बहुत दिनानि की अवधि आस-पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कौ।
कहि कहि आवन संदेसो मनभावन को,
गहि गहि राखत हैं दै दै सनमान कौ।
झूठी बतियानि की पत्यानि ते उदास ह्वै कै,
अब ना घिरत घनआनंद निदान कौ।
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेशो लै सुजान कौ।'

—घनआनन्द कवित्त ४४१

प्रस्तुत कवित्त में विरह की मर्मान्तिक वेदना का चित्रण हुआ है। इस कबित्त के सम्बन्ध में यह किंवदन्ति भी है कि घनानन्द ने मरते समय अपने रक्त से इसकी रचना की थी। वैसे अपनी प्रगाढ़ प्रेम-साधना को उन्होंने जीवन के उत्तरार्द्ध में लोकोन्मुख से ईश्वरोन्मुख अवश्य कर लिया था, लेकिन लगता है कि जीवन के अंतिम क्षणों में सुजान पुनः उनके स्मृतिपटल पर उभर आयी है। वेदना-विगलित होकर कवि ने लिखा है कि 'बहुत दिनों से प्रिय के आगमन की अवधि की आशा के पाश में बँधे रहने के बाद अब अत्यधिक व्याकुल होकर प्राण चलने के लिए निकल पड़े हैं। आज तक मैंने प्रिय-आगमन के संदेश दे-देकर, समुचित रूप से समझा-बुझाकर सम्मानपूर्वक इन्हें रोका है। लेकिन झूठी बातों में विश्वास से विमुख होकर अंततः इन्होंने मेरे सारे प्रयत्न विफल कर दिए हैं। शरीर से निकलकर प्राण अधर से आ लगे हैं। प्रिय सुजान के कुशल-समाचार की प्रतीक्षा में ये वहाँ रुके हुए हैं। उसके मिलते ही चल पड़ेंगे।' यहाँ किसी प्रकार की भौतिक या शारीरिक आकांक्षा से रहित विरही आत्म-विस्मृति की दशा में भी प्रिय की मंगल-कामना से प्रेरित है।

(ङ) **दैन्यजनित करुणा-भाव**—प्रगाढ़ प्रेम में विरह के अन्तर्गत दैन्य एवं निरवलंबता की स्थिति किसी-न-किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहती है। लेकिन एकतरफा या विषम प्रेम के अन्तर्गत यह दैन्य निरूपायता की दशा तक पहुँचकर करुण भाव की सृष्टि करने लगता है। घनानन्द की विरह-भावना के अन्तर्गत हमें इस दशा के चित्र अधिक मिलते हैं। इसे अच्छी तरह समझने के लिए कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं :

१. 'अकुलानि के पानि पर्‍यौ दिन-राति सु ज्यौ छिनकौ न कहूँ बहरै।
भए कागद नाव उपाव सबै, घनआनंद नेह-नदी गहरै।'

—घनआनन्द कबित्त, ५२

२. 'क्यौं करि बितैयै, कैसे कहाँ धौं रितैयै मन,
बिना जान प्यारे कब जीवन तें चूकियै।
बनी है कठिन महा मोहिं घनआनंद यौं,
मीचौ मरि गई आसरो न जित ढूकियै॥'

—घनआनन्द कबित्त, ६२

३. 'मग हेरत दीठि हिराय गई, जब तें तुम आवनि औधि बदी।
कब आयहौ औसर जानि सुजान, बहीर लौं बैस तो जाति लदी।'

—घनआनन्द कबित्त, १६३

४. 'तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये बिकल नैना ताहि नपि-नपि रे।
जीबे तें भई उदास तऊ है मिलन आस,
जीवहिं जिवाऊँ नाम तेरो जपि-जपि रे॥'

—घनआनन्द कबित्त, १०६

इन सभी उदाहरणों में एक घनीभूत विवशता का भाव प्रकट हुआ है। पहले उदाहरण में व्याकुलता और अधीरता उस सीमा तक पहुँची हुई दिखाई देती है जहाँ कि प्रेम के इस 'धीर पथिक' द्वारा प्रेम की गहराई को पार पाने के लिए किए गए सारे उपाय निरर्थक सिद्ध हो जाते हैं। दूसरे उदाहरण में विवशता की उस स्थिति का चित्रण है, जिसमें मरना भी अपने वश में नहीं रह गया है। तीसरे उदाहरण में एक आतुर प्रतीक्षा है, जिसमें सैनिक साज-सामान (बहीर) की तरह आयु के लाद-फानकर वापस जाने की चिन्ता से विरहिणी ग्रस्त है। चौथे उदाहरण में आतुर प्रतीक्षा में नेत्रों के थकने और अपने जीवन से उदास होने पर भी विरहिणी मिलन की आशा लिये हुए है। एकतरफा प्रेम की पृष्ठभूमि में इस प्रकार की विवशताजन्य वेदना करुणा-भाव की सृष्टि करती है। आत्म-निवेदन के कारण यह करुणा-भाव और अधिक द्रवीभूत करने वाला बन गया है :

१. तब ह्वै सहाय हाय कैसें धौं सुहाई ऐसी,
सब सुख संग लै बिछोह-दुख दै चले।
अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई,
हेली मनभावन अकेली मोहिं कै चले॥'

—घनआनन्द कबित्त, ३१

२. 'ऐसी बढ़ी घनआनँद बेदनि, दैया उपाय तें आवै तँवारो।
हौं ही भरौं अकली कहौं कौन सों, जा बिध होत है साँझ सवारो ॥'

—घनआनन्द कवित्त, ६२

यहाँ विरही-हृदय की वास्तविक वेदना को कवि ने वाणी प्रदान की है। पहले उदाहरण में प्रिय की अनुपस्थिति में विरहिणी को सारी दुनिया से कट जाने और नितान्त अकेली हो जाने की व्यथा व्यंजित हुई है। वह कहती है कि प्रिय जाते समय सारे सुखों को बटोरकर अपने साथ लेता गया और उसके बदले में उसे वियोग की व्यथा सौंप गया। पीड़ा की भीड़ ने उसे घेरकर बुरी तरह व्याकुल कर दिया। अंत में उसका यह कथन 'हे सखी ! प्रिय मुझे अकेली करके चले गए'—उसकी आन्तरिक मनोदशा की अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति करता है। यहाँ अकेलेपन में केवल प्रिय से ही अलग होने की स्थिति नहीं है, वरन् सारी दुनिया से अलग हो जाने की वेदना है। दूसरे उदाहरण में वेदनाधिक्य को बड़े ही सांकेतिक ढंग से व्यक्त किया गया है। 'जा विध होत है सांझ-सवारो (संध्या-प्रात:)' उसे 'हौं ही भरौं अकली' के माध्यम से विरहिणी ने अपनी मौन-व्यथा को मुखर कर दिया है। मौन को मुखरित करने की इस पद्धति पर घनानन्द का पूर्ण अधिकार था। स्थान-स्थान पर आह, हाय, अरे, दैया, अहो, रे आदि शोक और आश्चर्यसूचक शब्दों के अत्यन्त काव्यात्मक प्रयोग द्वारा तो कवि ने इस कार्य को सम्पन्न किया ही है, साथ ही मौन का सहारा लेकर भी इसे सम्पादित किया है :

'जो दुख देखति हौं घनआनंद रैनि-दिना बिन जान सुतंतर।
जानैं वेई दिन राति, वखाने तें जाय परै दिन-रात को अंतर ॥'

—घनआनन्द कवित्त, ४३

विरहिणी का यह कथन कि 'प्रिय के बिना रात-दिन मैं जो दुख देख (झेल) रही हूँ, उसे वे रात और दिन ही जानते होंगे, वे ही इसके साक्षी हैं। उसका वखान करने पर उसकी वास्तविक और कथित स्थिति में जमीन-आसमान का अन्तर आ जाएगा।' घनानन्द ने विरही की व्यथा को प्राय: इसी पद्धति से संकेतित किया है।

परम्परागत पद्धति के विरह-वर्णन में अभिलाषा, चिन्ता, गुणकथन, स्मृति, मूर्च्छा, उन्माद आदि विभिन्न मनोदशाओं का सहारा लिया जाता है। रीतिकाल के रीतिबद्ध कवियों ने वियोग-वर्णन में इन मनोदशाओं के लक्षणबद्ध चित्रण प्रस्तुत किए हैं। घनानन्द में इसका सर्वथा अभाव है। वैसे इन्होंने भी स्मृति, चिन्ता, अभिलाषा, उन्माद, मूर्च्छा आदि मनोदशाओं का वियोग-वर्णन में पूरा सहारा लिया है, लेकिन इन्हें शास्त्रीय लक्षणबद्धता से प्राय: मुक्त रखा है। विरहताप, कृशता, वैवर्ण्य आदि के चित्रण की ओर भी इनकी दृष्टि गई है, लेकिन

इन अवस्थाओं की ऊपरी नाप-जोख की अपेक्षा, इनके माध्यम से आन्तरिक व्याकुलता को उद्घाटित करने का प्रयास ही इनमें अधिक मिलता है। इसे एक उदाहरण द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता है :

'अंतर आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस।
ज्यौ कहलाय मसोसनि ऊमस, क्यौं हू कहूँ सु धरै नहिं थावस ।।'

—घनआनन्द कबित्त, २४

यहाँ अंतर की आँच बाहर वालों या निकटवर्तियों को न जलाकर केवल उच्छ्वास को गरम करती है और उद्वेग की ओस (हलका ताप) से अपने ही अंग तपते (उसीजें) हैं। मसोस (टीस) की गर्मी (उमस) से जो (मन) मुरझाता हुआ अधीर या व्याकुल हो जाता है। वस्तुत. वेदना की आँच में तपती हुई विरहिणी सहृदय के अन्दर भी वेदना उत्पन्न करती है। वेदना की सघनता घनानन्द के यहाँ रीतिबद्ध कवियों की भाँति विरहिणी को करुणा की विलासपूर्ण क्रीड़ा का क्षेत्र नहीं बनने देती। वह वास्तविक करुणा की मूर्ति बनकर हमारे सामने उपस्थित होती है :

'हिये मैं जु आरति सुजारति उजारति है,
मारति मरोरैं जिय डारति कहा करौं।
रसना पुकारि कै बिचारि पचि-हारि रहै,
कहै कैसें अकह उदेग रुँधि कं मरौं।
हाय कौन वेदनि विरंचि मेरे बाँट कीनी,
निघटि परौ न क्यौं हूँ, ऐसी विधि हौं गरौं।
आनन्द के घन हौ सजीवन सुजान देखौ,
सीरी परि सोचनि अचम्भे सों जरौ भरौं।

—घनआनन्द कबित्त, ४६

'हृदयस्थ वेदना अन्तःकरण को जलाते-उजाड़ते हुए मरोड़ कर प्राणों को मारे डाल रही है। बेचारी जिह्वा पुकार-पुकार कर थक गई है, लेकिन अकथनीय वेदना स्पष्ट नहीं कर सकी है। प्रकटीकरण के अभाव में व्याकुलता से अवरुद्ध होकर मैं भीतर-ही-भीतर मर रही हूँ। विधाता ने, पता नहीं, कैसी वेदना मेरे भाग्य में लिख दी है, जिससे तिल-तिल करके इस प्रकार गल रही हूँ कि पूरी तरह मर (समाप्त) भी नहीं पाती। अन्त में प्रिय सुजान को सम्बोधित करते हुए विरहिणी कहती है कि 'सोच के मारे ठण्डी पड़ती हुई मैं आश्चर्य से जलते हुए दिन काट रही हूँ।' इसमें व्यक्त विवशता, व्याकुलता, दैन्य आदि पाठक को करुणाभिभूत कर देते हैं। प्रिय की निष्ठुरता और प्रेमी की एकनिष्ठता इस

करुणा-भाव को और अधिक तीव्र करती हैं। इस तथ्य को जब सीधी और सहज शब्दावली में कवि प्रस्तुत करता है तो यह और भी हृदय द्रावक हो जाता है :

'पूरन प्रेम को मंत्र महापन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
ताही के चारु चरित्र विचित्रनि, यौं पचि कै रचि राखि विसेख्यौ।
ऐसा हियो-हित-पत्र पवित्र, जु आन कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
सो घनआनन्द जान, अजान लौं, टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ।।'

—घनआनन्द कवित्त, ९७

यहाँ विरहिणी ने अपने दृढ़ और पवित्र प्रेम के सन्दर्भ में प्रिय की निष्ठुरता की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति की है। यह अपने हृदय रूपी पवित्र प्रेम-पत्र की चर्चा करते हुए कह रही है कि 'उस पत्र में प्रिय के सुन्दर और मोहक चरित्र को श्रमपूर्वक संकल्प की पूर्ण दृढ़ता के साथ प्रेम के मंत्र के रूप में अंकित किया गया था। अर्थात् मेरे हृदय में कभी किसी अन्य की कामना की छाया तक भी नहीं पड़ी थी। उस हृदय रूपी पवित्र प्रेम-पत्र को प्रिय सुजान ने पढ़कर देखने से पहले ही एक अनभिज्ञ की तरह फाड़कर फेंक दिया।' 'अजान लौं टूक कियौ' में जानते हुए भी अजान की तरह टुकड़े-टुकड़े करना, अर्थात् निर्ममता से फाड़कर फेंक देने का भाव निहित है। इसके साथ 'बाँचि न देख्यौ' (देखना भी गवारा नहीं हुआ) से प्रिय के उपेक्षा भाव को संकेतिक किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विरह-भावना के अन्तर्गत दैन्य एवं निरुपायता जनित करुणा-भाव को कवि ने बड़ी ही सफाई के साथ प्रस्तुत किया है। वस्तुतः एकतरफा प्रेम की यह एक अत्यन्त स्वाभाविक स्थिति है। इस स्थिति तक पहुँचा हुआ प्रेमी ही एकतरफा प्रेम का एकनिष्ठता से निर्वाह कर सकता है।

(च) दृढ़ता और साहस—प्रेम-मार्ग के अत्यन्त धीर पथिक घनानन्द ने वियोग के अन्तर्गत दैन्य, विवशता, निरवलम्बता आदि करुणोत्पादक मनोदशाओं का समावेश करते हुए भी एक अपूर्व दृढ़ता और साहस का परिचय दिया है। वस्तुतः इनके यहाँ प्रेमोन्माद में प्रेमी इस बात की परवाह ही नहीं करता कि प्रिय भी उसे प्रेम करता है या नहीं। इसलिए घनानन्द के काव्य में आत्मदान की भावना अत्यन्त प्रबल है, जो प्रेम को साहसिक पथों की ओर अग्रसर करती है :

'चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनन्द घन,
प्रीति रीति विषम सु रोम रोम रमी है।'

—घनआनन्द कवित्त, ३३

वस्तुतः लोक और शास्त्र दोनों ही दृष्टियों से इस प्रकार के विषम प्रेम को उचित नहीं माना गया है। लेकिन इन बंधनों का उल्लंघन कर घनानन्द का प्रेमी

अपना प्रेमादर्श स्थापित करता है। वेदना और पीड़ा की कसक से इसका रोम-रोम भरा हुआ है। उसके प्रत्येक उच्छ्वास से निराशा का हाहाकार सुनाई पड़ता है। लेकिन इस साधना-मार्ग से उसमें कहीं भी विचलन नहीं दिखाई देता। निराशा प्रकारान्तर से दृढ़ता प्रदान करती हुई उसे एक कठोर साधना में प्रवृत्त कर देती है :

'आसा-गुन बांधि कै भरोसो-सिल धरि छाती,
पूरे पन-सिन्धु मैं न बूड़त सकायहौं।
दुख-दव हिय जारि अन्तर उदेग-आँच,
रोम-रोम त्रासनि निरंतर तचाय हौं।
लाख-लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सहारि सिर आरे लौं चलायहौं।
ऐसें घनआनन्द गही है टेक मन माहिं,
एरे निरदई ! तोहि दया उपजायहौं॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ५५/१६६

इस कवित्त में विरहिणी की ओर से परम साहस और दृढ़ निश्चय का परिचय दिया गया है। सूफी साधना से प्रभावित फारसी प्रेम-पद्धति की एक स्वस्थ झाँकी यहाँ प्रस्तुत हुई है। अत्यन्त निर्दय प्रिय के हृदय में दया उत्पन्न करने के लिए, उसकी आँखों के सामने डूब मरने या विरह वेदना की यंत्रणा झेलते हुए अपने को मिटा देने का दृढ़ निश्चय फारसी प्रेम-पद्धति का आदर्श है। यदि प्रेमी को यह विश्वास हो जाए कि उसकी मृत्यु के बाद प्रिय की आँखों में आँसू के दो बूँद या जिह्वा पर सहानुभूति के दो शब्द आ जाएँगे तो वह प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को तैयार हो जाता है। यहाँ विरहिणी आशा रूपी रस्सी से भरोसा रूपी शिला को छाती पर बाँध कर प्रेम के प्रतिज्ञा रूपी समुद्र में डूबने के लिए निर्भय होकर व्रत लेती है। यही नहीं, वरन दुःख की दावाग्नि में हृदय को जलाकर आन्तरिक व्यथा की त्रासदायक आँच में अपने सम्पूर्ण शरीर को निरन्तर तपाने का निश्चय भी करती है। 'लाख-लाख भाँति की विरह दशाओं को अच्छी तरह समझ कर उन्हें साहसपूर्वक झेलना'—कुछ वैसा ही है, जैसे अनेक साधना-पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म के साक्षात्कार का प्रयास। प्रेम और भक्ति—दोनों ही क्षेत्रों के लिए यह साधना फारसी साहित्य की देन है। रीतिकाल के अन्यान्य कवियों पर फारसी साहित्य का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। लेकिन उसके विषम या एकतरफा प्रेम की गम्भीरता की वास्तविक अभिव्यक्ति घनानन्द में ही मिलती है। इस प्रकार की प्रतिज्ञा 'एरे निरदई तोहि दया उपजाय हौं'—लौकिक श्रृंगार के चितेरों में सिर्फ घनानन्द की ही विशेषता है। विरहिणी प्रिय के सम्मुख

चुनौती प्रस्तुत करते हुए कहती है :

'मौन हूँ सो देखिहौं, कितेक पन पालि हौ जू,
कूक भरी मूँकता बुलाय आप बोलि है।

रुई दिएँ रहोगे कहा लौं बहराइवे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलि है।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ६३/२८६

वेदना की शक्ति पर इतना दृढ़ विश्वास हिन्दी के अन्य शृंगारिक कवियों में दुर्लभ है। 'कभी-न-कभी तो मेरी वेदना-विह्वल पुकार तुम्हारे बहरे कानों को खोलेगी ही'—इस प्रकार की दृढ़ता विरही की एकनिष्ठता के कारण है। प्रिय की करुणा-दृष्टि न भी मिले तो भी विरहिणी अपने साधना-पथ से विचलित नहीं होती। वह प्रिय के सम्मुख एक दूसरी ही चुनौती प्रस्तुत कर देती है :

'तुम दीन्ही पीठि, दीठि कीन्हीं सनमुख याने,
तुम पैंडे परे, राखि रह्यौ यह प्रान कों।

और सबै सहौं कछू कहौं न कहा है बस,
तुम्हैं बदौं तौ पै जौ बरजि राखौ ध्यान कौं॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १००/३१०

यहाँ प्रिय के ध्यान (स्मरण) को ही विरहिणी अपनी शक्ति और अमूल्य निधि मानकर चलती है। क्योंकि प्रिय के विमुख हो जाने पर वह उसकी ओर और अधिक उन्मुख हो जाता है। प्रिय प्राणों के पीछे पड़ा है, अर्थात् उसको समाप्त कर देना चाहता है, लेकिन ध्यान उसकी रक्षा में लगा हुआ है—तात्पर्य यह है कि प्रिय के ध्यान ने ही विरहिणी को जिन्दा रखा है। अंत में वह कहती है कि 'मैं बिना कहे सब कुछ सहन कर रही हूँ, क्योंकि इस पर मेरा कोई वश नहीं है। लेकिन तुम्हें तब जानूँ, जब तुम मेरे ध्यान को भी रोक लो।' इससे स्पष्ट है कि विरहिणी के पास केवल प्रिय की यादें ही रह गई हैं। इन यादों की रक्षा के लिए वह 'भयंकरतम विष के घमण्ड को चूर करने वाली विरह-दशा का निरंतर पान करते हुए अपने प्राणों को शरीर के अन्दर घोंट रही है। प्रेम के रण-क्षेत्र की धूलि में अपनी साँस को चूर-चूर कर, साहसपूर्वक उद्विग्नता के विषाक्त बाणों को अपने सीने पर झेल रही है।' अंत में वह अपने प्राणों को सान्त्वना देते हुए कहती है कि 'इतना करने पर भी यदि प्रिय अनुकूल नहीं होते तो तू भूलकर भी इसके लिए पश्चाताप मत करो। क्योंकि विधाता ने तुम्हारे हिस्से अंगारों पर लेटना ही

लिखा है' (घनानन्द कबित्त, ५६)। इससे स्पष्ट है कि घनानन्द ने विरहिणी के दैन्य और निरवलम्बता का चित्रण करते हुए भी उसमें एक अपूर्व साहस और दृढ़ता का समावेश किया है। वस्तुतः इस साहसिकता का मूलाधार कवि का विशेष प्रेमादर्श या उसकी प्रेम सम्बन्धी यह मान्यता है :

'चंदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हूँ रहै एक, देखिबे को रहै द्वै।
ज्ञान हूँ ते आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै।
जान घनआनंद अनोखो यह प्रेम-पंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि कै थकित ह्वै।
बुरौ जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना कै छाले परैं प्यारे नेह-नावं छ्वै॥'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ६५/२६६

यहाँ कवि ने प्रेम-साधना को ज्ञान-योग या भक्ति से भी उच्च स्थान दिया है। यह चन्द्रमा (प्रिय) को चकोर (प्रेमी) और चकोर को चन्द्रमा की स्थिति में ला देता है। जिस प्रकार ज्ञान की चरम स्थिति में ज्ञाता और ज्ञेय या भक्त और भगवान की अद्वैतता स्थापित हो जाती है, ठीक उसी प्रकार प्रेम की चरमावस्था में प्रेमी और प्रिय का भी अद्वैत हो जाता है। प्रेमी और प्रिय की पूर्ण एकता की स्थिति से उत्पन्न आनन्द (रस) में भोगियों की समूची भोग-भावना तिरोहित हो जाती है। अपने इस रूप में घनानन्द के यहाँ प्रेम साधना की उस भूमि पर पहुँच गया है, जहाँ वासना पूर्णतः तिरोहित हो गई है। प्रेम के इस अनोखे पथ पर आत्मविस्मृति में चलकर ही सफलता मिल सकती है, सतर्क होकर चलने वाला हार मान कर बैठ जाता है। अतः विषम होने के बावजूद भी घनानन्द के यहाँ प्रेम में अंततः एक समता की स्थिति मिलती है, जो सूफी प्रेम के अधिक निकट प्रतीत होती है। यहाँ प्रेम एक ऐसा साधना-मार्ग बन गया है, जो निरन्तर साधन से साध्य बनता गया है। इस अहैतुकता के कारण प्रेम या उसकी पीड़ा ही प्रेमी के लिए प्रिय की अमूल्य थाती बन जाती है :

'कौन कौन बात को परेखो उर आनियै हो,
जान प्यारे कैसे विधि-अंक टारियत है।
थाती लौं तिहारी प्रीति छाती पै बिराजि रही,
हेरि हेरि आँसुन - समूह ढारियत है॥'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ४२, १२६

प्रिय की उपेक्षा और उसकी निष्ठुरता को विधाता का अंक या भाग्य का लेखा मानकर विरहिणी अपने मन से असंतोष और सभी प्रकार के पछतावों को निकाल कर 'प्रेम की पीर' को प्रिय की मूल्यवान धरोहर के रूप में हृदय में सँजोए हुए है। उसके नेत्र इसे देखकर विह्वलतापूर्वक अश्रु न्यौछावर करते रहते हैं। एक-तरफा प्रेम के सन्दर्भ में इस प्रकार की तल्लीनता और अन्तरंगता प्रकारान्तर से विरही की दृढ़ता और साहस के ही सूचक हैं।

(छ) **वियोग में प्रकृति तथा अन्य बाह्य व्यापार**—वियोग-वर्णन में अपने समय के अन्य कवियों की भाँति घनानन्द ने भी वर्षा, मेघ, चाँद, चाँदनी, अँधेरी रात, फाल्गुन, वसंत, होली आदि प्राकृतिक उपकरणों एवं सामाजिक अवसरों का सहारा लिया है। संयोग-काल में ये उपकरण जिस प्रकार सुखात्मक अनुभूति में वृद्धि करते हैं, ठीक उसी प्रकार वियोग-काल में दुखात्मक अनुभूति को भी उद्दीप्त करते हैं। घनानन्द ने भी इनका उपयोग प्रायः उद्दीपन के रूप में ही किया है। लेकिन प्रकृति के रीतिबद्ध स्वरूप का परित्याग कर कवि ने उसके साथ एक गहरी आत्मीयता भी व्यक्त की है। इसे समुचित रूप से समझने के लिए एक उदाहरण लिया जा सकता है :

'एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, वारी
तोसों और कौन, मनै ढरकौंहीं बानि दै।
जगत के प्रान ओछे बड़े को समान, घन-
आनंद निधान, सुख-दान दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन-भारे अंत मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहिचान दै।
बिरह बिथाही भूरि, आँखिन मैं राख्यौ पूरि,
धूरि तिनि पायन की हा हा ! नेकु आनि दै॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ८४/२५६

रीतिबद्ध कवियों की भाँति घनानंद ने वियोग वर्णन में दूत-दूती या संदेशवाहक आदि की मध्यस्थता की व्यवस्था प्रायः नहीं की है। लेकिन उक्त उदाहरण में विरहिणी ने वायु से अपनी व्यथा का निवेदन करते हुए प्रिय के चरणों की धूलि लाने का अनुरोध किया है। वस्तुतः पवनदूत और मेघदूत की परम्परा भारतीय साहित्य में पर्याप्त प्राचीन काल से रही है। इससे जहाँ एक ओर व्यापक प्रकृति के साथ विरही के हृदय का तादात्म्य सिद्ध होता है, वहीं दूसरी ओर कवि की रीतिमुक्तता का भी आभास मिलता है। वायु की सर्वत्र प्रसरणशीलता और उसके समतावादी-लोकहितकारी स्वरूप का स्मरण कराते हुए विरहिणी अपने अत्यन्त रूपवान प्रिय की विमुखता से भी परिचित कराती है। प्रिय के मन में उपेक्षा भाव

है, अतः उसके पास कोई संदेश न भेजकर वह वायु से केवल इतना ही अनुरोध करती है कि 'मेरी विरह-वेदना को दूर कराने में संजीवनी बूटी का सा असर रखने वाली प्रिय-चरणों की थोड़ी-सी धूलि वह ला दे।' प्रिय की चरण-रज को आँखों में अंजन की तरह लगाकर संतोष कर लेना, उसके प्रेम की अहैतुकता का संकेतक है। मेघदूत के सन्दर्भ में भी कवि ने कुछ इसी प्रकार की भावना को प्रकट किया है :

'परकाजहि देह कों धारि, फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ।
घनआनंद जीवन-दायक हौ कछु मेरियौ पीरहिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसौ॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १०८/३३९.

विरहिणी बादल को दौत्य-कर्म के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि 'तुम दूसरों की भलाई के लिए शरीरधारण कर अपने परजन्य (जो दूसरों के हित के लिए उत्पन्न हो) नाम को सार्थक करते हो। अतः मेरे लिए भी तुम अपने इस नाम को सार्थक करो। समुद्र के खारे जल को अमृत के समान करते हुए तुम सभी प्रकार से अपनी सज्जनता का परिचय देते हो। सारे संसार को तुम जीवनदान करने वाले हो, अतः मेरी पीड़ा को भी अपने हृदय में अनुभव करो। यदि और कुछ नहीं कर सकते तो कम-से-कम उस विश्वासघाती प्रिय के आँगन में कभी अवसर देखकर मेरे आँसुओं की वृष्टि करो। अर्थात् मेरी वेदना को उस तक पहुँचाओ।' कहने का मतलब यह कि जिस प्रकार तुम यहाँ घिर कर मेरे हृदय में व्यथा की वृद्धि करते हो, उसी प्रकार प्रिय के देश में भी घिर कर उसके हृदय में मेरे प्रति वेदना उत्पन्न करो। इस प्रकार के सहज निवेदनों के अतिरिक्त घनानन्द ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में भी चित्रण किया है। अपने इस रूप में वायु और बादल विरहिणी की व्यथा को बढ़ाने वाले सिद्ध होते हैं :

'वहै सुख-स्रम-स्वेद-समैं को सहाय पौन
नाहिं छियैं देह, दैया महादुखी-दहिगौ।
वेई घनआनंद जू जीवन को देते, तिनही
को नाम मारिनि के मारिबे कौं रहिगौ।

—घनआनन्द कबित्त, १८५

वियोग में संयोग-काल के सुखोद्दीपक प्राकृतिक उपकरण व्यथावर्द्धक हो जाते हैं। प्रस्तुत उदाहरण में मिलन-सुख से उत्पन्न श्रम-स्वेद के समय शीतलता प्रदान करने वाली वायु अब विरह-काल में शरीर को छूती तक नहीं और यदि

छूती है तो महादुखिया को जलाकर निकल जाती है। संयोग-काल में शरीर को नवजीवन प्रदान करने वाले बादल अब विरह व्यथा से मरे हुए के लिए मारने वाले बन गए हैं। इस प्रकार प्रकृति के सारे उपकरण संयोगकाल की अपनी प्रकृति को वियोग काल में पूरी तरह परिवर्तित कर देते हैं। चाँदनी से सम्बद्ध एक उदाहरण द्वारा इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है :

'नेह निधान सुजान समीप तौ, सींचति ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई, दई हेरति ही मति जति हेराई।
है विपरीति महा घनआनंद, अंबर तें धर को झर आई।
जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई॥'

—घनआनन्द कवित्त, ४०

चाँदनी के प्रभाव-वैषम्य से चकित विरहिणी की वेदना को कवि ने यहाँ अत्यन्त कौशल के साथ प्रस्तुत किया है। चाँदनी को देखकर वह कह रही है कि 'प्रेम के आगार प्रिय सुजान के निकट रहने पर तो यह हृदय को सींचकर शीतल करती थी। समझ में नहीं आता कि अब वह पहले वाली चाँदनी है या कोई दूसरी हो गई है।' इस सम्बन्ध में सबसे 'विचित्र बात तो यह है कि आकाश से आग की लपटें पृथ्वी की ओर आ रही हैं जब कि लपटों की विशेषता यह है कि वे नीचे से ऊपर की ओर जाती हैं। ये लपटें काम-वेदना की ज्वाला से सभी अंगों को जला रही हैं। लगता है यह चाँदनी नहीं, वरन् कोई नए प्रकार का अग्निदाह है।' वस्तुत: घनानन्द जहाँ बाह्य उपकरणों का सहारा लेने लगते हैं, वहाँ अभिव्यक्ति की मार्मिकता में प्राय: बाधा पड़ती है। यहाँ चाँदनी के प्रभाव-वैषम्य पर अधिक दृष्टि होने के कारण विरहिणी की वेदना पूरी तरह उद्घाटित नहीं हो पाती। लेकिन इस तरह के बाह्यनिरूपक चित्र इनके काव्य में बहुत ही कम मिलेंगे। होली, वसंत, पावस आदि के प्रसंगों में कवि ने विरहिणी की व्यथा का अत्यन्त मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से फाल्गुन का एक उदाहरण लिया जा सकता है :

'सोंधे की वास उसाँसहिं रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को।
नैननि बैरी सु है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को।
राग बिराग धमार त्यौं धारसी, लौटि पर्‌यौ ढंग यों सबही को।
रंग-रचावन जान बिना घनआनंद लागत फाल्गुन फीको॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ ८५/२६२

फाल्गुन महीने में आने वाली होली एक अत्यन्त रंगीन और उत्साह-वर्द्धक त्यौहार है। लेकिन विरहिणियों के लिए यह अत्यन्त मारक बन जाता है। यहाँ

विरहिणी के लिए होली के अवसर पर प्रयुक्त होने वाली सुगंधियाँ दमघोंटू और चन्दनादि शीतल पदार्थों का लेप प्राणों को दग्ध करने वाला सिद्ध हो रहा है। वातावरण में उड़ता हुआ गुलाल उसके नेत्रों के लिए कष्टकर शत्रु और हवा में उड़ता हुआ अबीर उसके धैर्य को उड़ाने(समाप्त करने) वाला साबित हो रहा है। विभिन्न राग-रागिनियों में गाए जाने वाले गीत उसमें वैराग्य उत्पन्न करने वाले और धमार (होली का एक विशेष गीत) उसके हृदय पर तलवार की धार जैसी चोट करने वाला सिद्ध हो रहा है। इस प्रकार होली के रंगीन उत्सव पर होने वाली सारी उत्साह-वर्द्धक क्रियाओं का प्रभाव ही उलटा हो गया है। आनन्द की रचना करने वाले प्रिय सुजान के बिना विरहिणी के लिए फाल्गुन फीका और अत्यन्त उदासी का वातावरण उपस्थित करता है। घनानन्द ने होली के इस प्रकार के हृदय विदारक अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं। होली में कन्हैया बनने वाले बहादुरशाह 'रंगीले' के राजदरबार का प्रभाव इसमें स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है अपनी ऐहिकतापरक या लौकिक श्रृंगार की रचनाओं में घनानन्द ने इस अवसर को प्राय: वियोग से सम्बद्ध करके देखा है। इनके भक्तिपरक पदों में भी होली का सर्वाधिक चित्रण है, लेकिन वहाँ इस अवसर को प्राय: राधा-कृष्ण के संयोग के साथ सम्बद्ध किया गया है। एक उदाहरण के माध्यम से इसे समझा जा सकता है :

'हौं उनके रँग वे मेरे रँग भीजि भीजि रीझनि माँची रसहोरी है।
भली भई फागु के दिननि में उघरि परी हितचोरी है।
प्रीतिरीति गीतनि गावत ब्रज घर घर केसरि घोरी है।
आनंदघन राधिका दामिनी जगत-उजागर जोरी है ।।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पद संख्या ३१८

'पदावली' के अधिकांश पदों में इसी प्रकार की क्रीड़ापरकता मिलेगी। लेकिन 'सुजानहित' में इस पर्व को व्यथा-वर्द्धक रूप में ही कवि ने चित्रित किया है :

फागुन महीना की कही ना परैं बातैं दिन—
रातैं जैसे बीतत सुने ते डफ-घोर कों।
कोऊ उठै तान गाय, प्रान बान पैठि जाए,
हाय चित-बीच पै न पाऊँ चितचोर कों।
मची है चुहल चहूँ ओर चोप-चाँचरि सों,
कासों कहौं सहौं हौं बियोग झकझोर कों।
मेरो मन आली वा बिसासी बनमाली बिन,
बावरे लौं दौरि-दौरि परै सब ओर कों ।।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृष्ठ १२६/४११

फागुन महीने में निरन्तर बजने वाले डफ (ढोल) की भयंकर आवाज़ सुनकर विरहिणी जिस यातना में अपना समय काट रही है, उसे कहा नहीं जा सकता। इस महीने में गाए जाने वाले गीतों की एक-एक तान उसके हृदय में बाण की तरह प्रविष्ट होकर पीड़ा पहुँचाती है। चाँचर (होली का विशेष गीत) की उमंग से भरपूर समूचे विनोदपूर्ण वातावरण में वह विरह द्वारा जिस प्रकार झिझोड़ी जा रही है, उस यंत्रणा को बिना कहे मौन-भाव से सहन कर रही है। विश्वासघाती प्रिय के अभाव में उसका मन पागलों की तरह चारों ओर दौड़ता फिर रहा है।

फागुन मास और उसमें पड़ने वाले होली के त्यौहार के साथ ही वसंत को भी घनानन्द ने विरहोद्दीपक के रूप में चित्रित किया है। रतिराज (कामदेव) का सहायक होने के नाते ऋतुराज (वसंत) विरहिणी के लिए अत्यन्त मारक सिद्ध हो रहा है :

'बासर बसंत के अनन्त ह्वै के अंत लेत,
ऐसे दिन पारै जु निहारै जिय राति है।
लतनि की फूलनि तमालनि पै झूलनि कों,
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।
प्यारे घनआनँद सुजान, सुनौ ! बाल-दसा,
चंदन-पवन तें पजरि सियराति है।
औसर सम्हारौ न तौ अनआयबे के संग,
दूरि देस जायबे कौ प्यारी नियराति है॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० १२६/४१०

यहाँ नायिका की विषम स्थिति का दूती द्वारा प्रिय से निवेदन किया गया है। वह कह रही है कि 'वसंत के दिन अंतहीन होकर विरहिणी को मारे डाल रहे हैं। उसके लिए इन्होंने ऐसी घड़ी उपस्थित कर दिया है कि चारों तरफ अंधकार-ही-अंधकार दिखाई देता है। लताओं का फूलना और मस्ती के साथ तमाल वृक्षों के गले लगकर झूलना देखकर वह विचित्र ढंग से पीली पड़ती जा रही है। शीतल, मंद, सुगंधित वायु से वह झुलस कर ठंडी पड़ने वाली है। समय रहते ही यदि आप उसे संभाल नहीं लेते तो उसकी कुशल नहीं है। आपके न आने के साथ (न आने पर) वह दूर देश के निकट (मृत्यु के करीब) पहुँचती जा रही है।' यहाँ यह स्मरणीय है कि घनानन्द ने संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों के चित्रण में दूती या मध्यस्थ का सहारा प्रायः नहीं लिया है। लेकिन इस प्रकार का विधान उन्होंने जहाँ भी किया है, वहाँ रीतिबद्धता का आभास मिलने लगता है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि प्रकृति के संबंध में उनकी दृष्टि अधिक व्यापक है। फलस्वरूप इनके यहाँ प्रकृति मानवीय भावधारा से रंजित

होकर प्रस्तुत हुई है। इसे समझने के लिए पावस का एक उदाहरण लिया जा सकता है :

'बिकल बिषाद भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनि हू लहकि बहकि यौं जर्‌यौ करै।
जीवन-अधार पन-पूरित पुकारनि सों,
आरत पपीहा नित कूकनि कर्‌यौ करै।
अस्थिर उदेग-गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिडर्‌यौ सा बन-बीथिनि रर्‌यौ करै।
बूंदें न परति मेरे जान जान प्यारी, तेरे
बिरही कों हेरि मेघ आंसुनि झर्‌यौ करै॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० ७४/२२६

विरही की अन्तर्मुखता और आत्मनिष्ठता समूचे प्राकृतिक व्यापार को उसकी वेदना से रंजित कर देती है। प्रकृति से इस प्रकार का तादात्म्य सूफी कवि जायसी के साथ ही सूरदास, मीरां, कबीर आदि सभी भक्त कवियों में हमें देखने को मिलेगा। रीतिबद्ध कवियों में इसका पर्याप्त अभाव दिखाई देता है। प्रस्तुत कवित्त में दूती नायिका से उसके प्रेमी की व्यथा का निवेदन कर रही है। वह पावसकालीन समस्त प्राकृतिक क्रिया व्यापार का कारण विरही की व्यथा में दिखाकर नायिका के हृदय में दया उत्पन्न करना चाहती है। विरही की विषाद-पूर्ण स्थिति से द्रवीभूत होकर बिजली का पागल होकर दहक उठना और अपने जीवनाधार प्रिय के प्रेम की प्रतिज्ञा से परिपूर्ण उसकी (विरही की) पुकार को सुन पपीहे का करुणाभिभूत होकर क्रन्दन करना, व्यथा के सर्वग्रासी होने की मार्मिक अभिव्यक्ति है। विरही की अस्थिर और बेचैन स्थिति से व्याकुल होकर वायु का दिग्भ्रमित होना तथा वन और गलियों में भटकना इस व्यथा की मार्मिकता में और अधिक वृद्धि करता है। अंत में यह कथन कि 'ऐ प्यारी सुजान! ये बरसात की बूंदें नहीं, वरन् तुम्हारे विरही की व्यथा से द्रवीभूत होकर बादलों ने अश्रु की झड़ी लगा रखी है।' प्राकृतिक क्रिया-व्यापार में इस प्रकार की सहानुभूति प्रकृति के साथ मानव के चिरसाहचर्य का संकेतक है। वह अपने सुख और दुख में प्रकृति को अपने सबसे निकट पाता है। प्रस्तुत उदाहरण में भी कवि ने मध्यस्थ के रूप में दूती का विधान किया है, लेकिन परम्परा का यहां निर्जीव रूढ़ि के रूप में अन्धानुकरण नहीं किया गया है। प्राकृतिक व्यापारों में इस प्रकार की सहानुभूति प्रदर्शन के साथ ही कवि ने उनमें शत्रु-भाव का भी समावेश किया है। कोकिल, मोर, पपीहा, बादल आदि की आवाज विरहिणी की वेदना के लिए कटे पर नमक का कार्य करती प्रतीत होती है :

कारी कूर कोकिला ! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अबही करेजो किन कोरि लै।
पैंडे परे पापी ये कलापी निसि द्यौस ज्यौं ही,
चातक ! घातक त्यौ ही तू हू कान फोरि लै।
आनँद के घन प्रान-जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।
जौं लौं करै आवन बिनोद-बरसावन वे,
तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै।।'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० ८७/२६६

इसमें नाम-परिगणना-प्रणाली और रीतिबद्धता का आभास अवश्य मिलता है, लेकिन आत्म-निवेदन के रूप में विरहिणी द्वारा कोकिल, मोर, चातक, बादल आदि के लिए प्रयुक्त आक्रोशसूचक विशेषण सारे वर्णन में एक व्यक्तिनिष्ठ स्पर्श ला देते हैं। अतः इसे नितान्त रीतिबद्ध एवं घिसा-पिटा वर्णन नहीं कह सकते। इसी प्रकार सावन, माघ, ग्रीष्म, वसंत आदि महीनों-ऋतुओं तथा अन्यान्य प्राकृतिक उपकरणों और दृश्यों के माध्यम से घनानन्द ने विरह-व्यथा की मार्मिकता को सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति दी है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि घनानन्द की विरह-भावना वेदना की विलासपूर्ण कल्पना न होकर अधिकांशतः अपने निजी जीवनानुभवों पर आधारित है। इसलिए उसमें एक विशेष प्रकार की सहजता और हृदयस्पर्शिता मिलती है। गहन चिन्ताजन्य आत्म-निवेदन और निजी अनुभव-संदर्भ इनके वियोग-वर्णन को मात्र वर्णन न रहने देकर आत्माभिव्यक्ति का दर्जा देते हैं। अतः इनकी वेदना पाठक को अपना सहभागी बनाती है। यह विशेषता इन्हें अपने युग के अधिकांश कवियों से भिन्नता प्रदान करती है।

६. भक्ति-भावना

घनानन्द की भक्ति-भावना की चर्चा के बिना, उनका परिचय अधूरा ही रहेगा। लौकिक प्रेम के संयोग और वियोग—दोनों ही क्षेत्रों में निष्णात और 'प्रेम की पीर' का अद्भुत गायक यह कवि आगे चलकर ईश्वरोन्मुख हो गया है। भौतिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम में रूपान्तरण मध्यकालीन मानसिकता का एक बहुत बड़ा सत्य है। सूर, तुलसी, नन्ददास, रसखानि आदि भक्तिकालीन कवियों में ही नहीं, वरन् पद्माकर आदि रीतिकालीन कवियों में भी इसे देखा जा सकता है। घनानन्द के जीवन-वृत्त के सन्दर्भ में इस तथ्य की ओर संकेत किया जा चुका है कि लौकिक प्रेम की असफलता से प्रेरित होकर वे वृन्दावन चले गए और वहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित होकर सखी-भाव के उपासक बन गए। सुजान वेश्या के प्रति इनकी घोर आसक्ति राधा और कृष्ण के प्रति प्रेम में रूपान्तरित हो गयी। इस प्रकार वासना का साधना में रूपांतरण एक ठोस मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है। मध्य काल के धर्म प्राण जीवन के लिए यही स्वाभाविक मार्ग था। यहाँ यह तथ्य विशेष उल्लेखनीय है कि घनानन्द द्वारा अपनाई गई लौकिक क्षेत्र की उन्मुक्तता भक्ति के क्षेत्र में प्रायः गायब हो गई है। फलस्वरूप शिल्पगत लाक्षणिकता और वाणी की वक्रता में भी पर्याप्त कमी आई है। साम्प्रदायिक भक्त 'बहुगुनी' के रूप में घनानन्द का कथन है :

'राधा-मदन गोपाल की हौं सेज बनाऊँ।
दूध फेन फीको करै बर बसन बिछाऊँ।
बासंती नव कुसुम लै रचि रुचिहि रचाऊँ।
नव पराग भरि भाव सों तिन पर बगराऊँ॥

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पद ११६

अभिव्यक्ति की इस सहजता में भी एक विशेष प्रकार की तन्मयता देखी जा सकती है। इस तन्मयता का आधार लौकिक प्रेम के प्रत्यक्ष अनुभव हैं। अपने लौकिक वियोग-काल में कवि ने प्रेम का गहराई से अनुभव किया था और उसके स्वरूप पर विचार करते हुए अंत में निर्धारित किया था कि आध्यात्मिक प्रेम-पयोधि की 'तरल तरंग' का ही एक क्षुद्र कण समस्त विश्व का लौकिक प्रेम है :

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै विचार,
बापुरो हहरि बार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एक रस ह्वै बिबस अवगाहै दोऊ,
नेही हरि राधा जिन्हें देखे सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल-तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसें मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।।'
—घनआनन्द कवित्त, पृ० २०२/३१०

इससे स्पष्ट है कि लौकिक प्रेम राधा-कृष्ण के अलौकिक प्रेम का ही एक अंश है। फलस्वरूप घनानन्द अंश को त्याग कर अंशी की ओर उन्मुख हुए हैं।

कवित्त-सवैयों में रचित 'सुजान हित' को छोड़कर घनानन्द की अन्य सभी रचनाएँ किसी-न-किसी रूप में उनकी भक्ति-भावना से सम्बन्धित हैं। यद्यपि इनका साहित्यिक गौरव लौकिक प्रेमपरक रचनाओं के कारण ही है, फिर भी मात्राधिक्य के कारण और इनके समग्र व्यक्तित्व से समुचित परिचय के लिए भक्तिपरक रचनाओं का पर्याप्त महत्व है।

कृपाकन्द घनानन्द की भगवत्कृपा के महत्व से सम्बन्धित रचना है, जिसमें 'सुजान हित' के भी कुछ कवित्त-सवैये समाविष्ट कर लिये गए हैं। इस रचना के अधिकांश कवित्त-सवैयों तथा पदों में सुजान नाम को स्याम के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। इसके साथ ही सांसारिक विरक्ति के भाव को स्याम-कृपा के साथ जोड़ा गया है। लगता है कि यह घनानन्द की विरक्ति के आरंभिक दिनों की रचना है, जिसमें 'सुजान हित' का कवि साफ-साफ पहचान में आता है। इसका एक उदाहरण है :

'आयु जौ वायु तौ धूरि सबै सुख जीवन-मूरि संभारत क्यौं नहीं।
ताहि महागति तोहि कहा गति बैठें बनैगी बिचारत क्यों नहीं।
नेमनि संग फिरै भटक्यौ पल मूँदि सरूप निहारत क्यौं नहीं।
स्याम-सुजान-कृपा-घनआनँद प्रान-पपीहनि पारत क्यौं नहीं।।
—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० १५१/१२

सांसारिक जीवन और सुखों के प्रति विरक्ति कवि को भगवत्-भक्ति की ओर ले जाती है।

वियोग बेलि में घनानन्द ने कृष्ण के प्रति गोपियों की विरहानुभूति का चित्रण किया है। कवि के लौकिक विरह की व्यथा किस प्रकार अलौकिक के विरह की व्यथा बन गई है—इसका अच्छा उदाहरण इस रचना में मिलता है।

लगता है गोपियों के माध्यम से कवि ने अपनी ही व्यथा का निवेदन किया है। इसे स्पष्ट रूप से समझने के लिए एक-दो उदाहरण पर्याप्त हैं :

'अनोखी पीर प्यारे कौन पावै।
पुकारौं मौन में कहिबो न आवै॥
अचंभे की अगनि अंतर जरौं हौं।
परौ सियरी भरौं नाहिं मरौं हौं॥

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० १६८/१६-१७

फारसी शैली की भावावेशपूर्णता यहाँ स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। सारी रचना इसी शैली में लिखी गई है। स्थान-स्थान पर 'सुजान हित' की लाक्षणिक शब्दावली भी इसमें दिखाई देती है। 'इश्कलता' की रचना भी कवि ने इसी शैली में की है। इसमें प्रगाढ़ प्रेम-भावना और गहरी वियोग-व्यथा के साथ ही प्रिय के मादक सौन्दर्य का वर्णन फारसी की अतिशय भावात्मक शैली में किया गया है। इसकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों के साथ पंजाबी भाषा की प्रमुखता है। केवल दोहों में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। अरल्ल, निसानी, माँझ आदि छन्दों की भाषा अरबी-फारसी मिश्रित पंजाबी है। इसमें इश्क़, महबूब, यार, दिलदार, जहर, कहर आदि शब्द फारसी की शेरो-शायरी का वातावरण प्रस्तुत करते हैं। दो-चार उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी :

'ज़िगर जान महबूब अमाने की बेदरदी दैंदा है।
पाक दिलाँ दे अन्दर धँसकर बेनिसाफ दिल लैंदा है॥
दिलपसंद दिलदार यार तू मुजनूँ की तरसान्दा है।
रत्ति-दिहाड़े तलब तुसाड़ी अक्कल इलम उड़ान्दा है॥'

—घनआनन्द ग्रन्थावली, पृ० १७७/१८-१९

इस प्रकार की भाषा और भावाभिव्यक्ति को देखकर कुछ विद्वानों ने इसे घनानन्द से भिन्न किसी दूसरे आनन्दघन की रचना बताया है। लेकिन घनानन्द की मूल रचना-दृष्टि को देखते हुए इस प्रकार की आशंका निर्मूल लगती है। उनकी अन्य रचनाओं से समानता देखने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त है :

'हीन भए जल-मीन छीन बुधि मैंडी पीर न पावै है।
लाय कलंक यार अपने कूँ तैं ही छिन मरि जावै है॥

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० १८१/४१

यही भाव ऐसी ही शब्दावली में 'सुजान हित' के अन्तर्गत इस प्रकार आया

हीन भए जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै॥
—घनआनन्द कवित्त, पृ० ४५/८८

'यमुना यश', प्रीति पावस, 'रंग बधाई' आदि बहुत ही छोटी रचनाएँ हैं, जिनके नाम से ही उनके विषय स्पष्ट हैं। **'प्रेम पत्रिका'** भी एक छोटी ही रचना है, लेकिन काव्य गुणों की दृष्टि से यह 'सुजान हित' जैसी ही है। इसका आरम्भ प्लवंग छन्द से इस प्रकार होता है :

'स्याम तिहारी पाती तुमहिं सुनाइहौं।
हाय हाय फिरि हाय कहूँ जो पाइहौं॥
—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० १६१/१

इसके बाद विरहिणी गोपियों ने प्रेम-पत्र के माध्यम से उपालंभ मिश्रित अपना संदेश कृष्ण के पास भेजा है। **अनुभव चन्द्रिका, गोकुलगीत, नाम माधुरी, गिरि पूजन, भावना प्रकाश** आदि रचनाओं में भक्ति भावना के विविध रूप आए हैं। भक्ति भावना की दृष्टि से 'प्रेम-पद्धति' और 'वृषभानुपुर सुषमा वर्णन' का विशेष महत्व है। **'प्रेम पद्धति'** में कवि ने अपने सम्प्रदाय की उपासना-पद्धति को अच्छी तरह स्पष्ट किया है। गोपी भाव का अनुसरण करते हुए, उनके प्रति आदर निम्बार्क सम्प्रदाय में विहित सखी भाव की उपासना का संकेतक है। इसका आरंभ गोपियों के महत्व स्मरण से इस प्रकार होता है :

'कहा कहौं गोपिन कौ प्रेम। बिसरे जहाँ सबै विधि नेम॥

'प्रेम-पद्धति' की भाँति ही **वृषभानु पुर सुषमा-वर्णन** का भी साम्प्रदायिक दृष्टि से विशेष महत्व है। इसके नाम से लगता है कि इसमें वृषभानुपुर का वर्णन होगा। लेकिन इस दोहे और चार चौपाइयों में वृषभानुपुर का वर्णन करने के बाद कवि ने अपनी साम्प्रदायिक स्थिति को विस्तार से स्पष्ट किया है। अपने को राधा की 'चौकस चेरी' बताते हुए उसने ललिता, विसाखा आदि राधा की अंतरंग सखियों के प्रति भी अपना आदर-भाव व्यक्त किया है। राधा ने प्रसन्न होकर उसका 'बहुगुनी' नाम रखा है। वस्तुतः निम्बार्क सम्प्रदाय के उपासक घनानन्द को सखी भाव की उपासना के लिए साम्प्रदायिक नाम 'बहुगुनी' प्राप्त हुआ था :

राधा नाँव बहुगुनी राख्यौ।
सोई अरथ हिये अभिलाख्यौ॥
—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० २४१/१६

बहुगुनी का अर्थ है: बहुत गुणों से युक्त। भक्त के रूप में इस अर्थ की हृदय

में पूर्ण अभिलाषा ही 'बहुगुनी' का उद्देश्य है :

'रीझनि बिबस होत जब जानौं।
तब बहुगुनी कला उर आनौं ।।'

बहुगुनी कला का अभिप्राय भी इस रचना में स्पष्ट किया गया है। राधा की चेरी के रूप में बहुगुनी का कार्य है श्रृंगार के सब सामान एकत्र करना; फूलों के आभूषण बनाना; रमणीय उक्तियों, कवित्त, छन्द, संगीत आदि से राधा को प्रसन्न करना। सम्प्रदाय की ओर से ये ही कार्य घनानन्द को सौंपे गए थे। अपनी गायन कला और कवित्व शक्ति के लिए वे प्रसिद्ध थे ही। इसे प्रस्तुत रचना में इस प्रकार संकेतित किया गया है:

ताही सुरहिं साधि कछु बोलौ। प्रेम लेपेटी गाँसनि खोलौं ।।
दुरी बात हू उघरि परै जब। सो सुख कह्यौ परत न कछू तब ।।

सुर साधना और 'दुरी बात' को खोलकर राधा-कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए घनानन्द के कृतित्व का लगभग एक तिहाई अंश विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध पद साहित्य है। अतः भक्ति-भावना की दृष्टि से इनकी पदावली का विशेष महत्व है।

घनानन्द की **पदावली** में कुल १०५७ पद हैं। ये सभी पद कवि की भक्ति-भावना से सम्बद्ध हैं। सात्विक भक्ति, श्री कृष्ण बधाई, यमुना यश, मुरलीवादन, प्रेम की अनन्यता, पूर्वानुराग, अभिलाषा, प्रेमोपालम्भ, संयोग केलि, विरह, खण्डिता, मान, विविध प्रकार की लीलाएँ, होली, वसंत, फाग आदि इन गीतों के प्रमुख विषय हैं। सखी भाव की उपासना के अन्तर्गत कृष्ण-भक्ति के सम्पूर्ण आचार विधान इन गीतों में अच्छी तरह समाहित हो गए हैं।

गीति काव्य की दृष्टि से घनानन्द की पदावली एक अनूठी रचना मानी जा सकती है। व्रजभाषा संगीत, विशेषकर सूर संगीत से इसमें पर्याप्त भिन्नता है। सूर के पद शब्दार्थ प्रधानता के कारण काव्यात्मक भले ही हों, लेकिन ताल, लय आदि की दृष्टि से घनानन्द के पद अधिक महत्वपूर्ण हैं। महात्मा हितवृन्दावनदास की 'हरिकला वेलि' में घनानन्द के ख्याल की इस प्रकार प्रशंसा की गई है :

'आनन्दघन को ख्याल इक गायौ खुलि गए नैन।
सुनत महा विह्वल भयौ मन नहिं पायौ चैन ।।

वस्तुतः ख्याल में शब्दार्थ की अपेक्षा संगीत तत्व की प्रधानता होती है। अति संक्षिप्त शब्द-रचना को ताल और सुर के आरोह-अवरोह द्वारा विस्तार, इसकी विशेषता है। उदाहरण के लिए घनानन्द का एक ख्याल लिया जा सकता है :

तोरे कारनुवाँ का करौं मोरा जिय तरसै।
आनँदघन प्रिय दरस औसेरनि अँसुवनि मेहा बरसै।।

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ४१९/३८३

यह अपने आप में एक सम्पूर्ण गीत है। लेकिन इसकी पूर्णता की सिद्धि ताल और सुर के माध्यम से होती है। आलाप इसका प्राण है। ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण है:

'हेली हौं कैसे कै जावँ जमुना-जल लंगर छैल ठाढ़ो
गैल माँझ करैं बोली-ठोली।
ब्रजमोहन आनँदघन उनयौ ही रहै कहि कहाँ रहौं
दैया ऐसे अबोली।।

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ४३५/४५०

ख्यालों के साथ ही घनानन्द के ताल-लयाश्रित अधिकांश पद भी बहुत छोटे-छोटे, तीन-तीन, चार-चार पंक्तियों के हैं। इन सभी में काव्यतत्व की अपेक्षा संगीत तत्व की प्रमुखता है। शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से ये अपेक्षाकृत कुछ क्लिष्ट अवश्य हैं, लेकिन स्थान-स्थान पर लोकगीत शैली के समावेश से इनमें एक विशेष प्रकार का आकर्षण आ गया है। उदाहरणार्थ एक पद है:

'बनवारी रे तैं तो बावरी करी।
मन की बिथा कौन सो कहियै बीतत जैसे घरी घरी।।'

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ४४७/५०५

लेकिन जहाँ इस प्रकार की लोकधुनें नहीं भी हैं, वहाँ लोक-तत्व और लोक भाषा के समावेश से कवि ने अद्भुत मार्मिकता उत्पन्न की है:

इन बिरहा फाग मचाय दई, आए न ए निरदई सुध्यौ न लई।
रंग लियौ सब अंगनि तें हौं भिजै भिजै यौं सुखई।
या की हथचलई कहा कहियै पल-पल हियरा होत हई।
आनँदघन ब्रजमोहन सोहन ऐसें औसर कैसें करत गई।।

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ५७४/१००९

इस प्रकार के वियोग सूचक पद घनानन्द की पदावली में कम है। 'सुजान-हित' का चिरवियोग तो इनमें प्रायः गायब है। क्रीड़ा-भाव, छेड़-छाड़, प्रिय-स्मरण अभिलाप दशा आदि के भाव ही पदावली में अधिक हैं। इस प्रकार के स्मरण, अभिलाषा आदि विरहमूलक न होकर मिलन सुख से प्रेरित लगते हैं। इस तथ्य को कुछ उदाहरणों के माध्यम से अच्छी तरह समझा जा सकता है:

अरी पनघटवा आनि अरै।
अटपटि प्यास-भरो ब्रजमोहन पलकनि ओक करै।
रुचिर चाय ललचाय निहारै मेरेऊ धीर हरै।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघन चोंपनि लाय झरै॥

घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ४६७/६६६

वस्तुत: इस प्रकार के छोटे-छोटे गीत अत्यन्त प्रगाढ़ मनोदशा में लिखे गए हैं। विभिन्न अवसरों पर गाए जाने के उद्देश्य से ही इनका निर्माण हुआ है। वसंत, होली आदि से सम्बद्ध सभी गीत प्रायः इसी उद्देश्य से लिखे गए हैं। लोक जीवन में भक्ति के प्रसार के लिए इस प्रकार का माध्यम सर्वाधिक प्रभावशाली होता है। उदाहरण के लिए यहाँ होली का एक गीत लिया जा सकता है:

मतवार मोहन होरी को।
जाहि सहज हीं रस को चसको घातन गहि बरजोरी को।
लटुवा भयौ फिरत दिन-रजनी लगुवा गोरी भोरी को।

या ब्रज यह औसर आनँदघन अतिरस ढोराढोरी को॥

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ५१६/७८०

सरस शृंगारिक भावनाओं के साथ ही घनानन्द ने विरक्तिपूर्ण सात्विक भक्ति के भी अनेक पद रचे हैं। इस प्रकार के पदों में विरक्त भक्त के मन की अविकल झाँकी मिलती है:

सुमिरि मन हरि पद साँचौ रे।
झूठैं राचि बृथा कित धावै डगमग खाँचौ रे।
सुथरो सुथिर जहाँ नहिं पहुँचत माया नाचौ रे।
अति अखण्ड आनँदघन दरसें फुरति न आँचौ रे।
तिहि रस सरसि होत किन कबहूँ जड़ रोमाँचे रे॥

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ३५०/८०

इस प्रकार हम देखते हैं कि पदावली के गीतों में भक्त-हृदय की तन्मयता अपनी पूरी तीव्रता के साथ उजागर हुई है। भक्ति विषयक अन्यान्य रचनाओं का अवलोकन करने के बाद हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि घनानन्द ने जिस तन्मयता के साथ लौकिक शृंगार का चित्रण किया है, ठीक उसी तल्लीनता के साथ भक्ति के क्षेत्र में भी रमे हैं। सुजान के प्रति उनका सारा लौकिक आकर्षण अन्तत: राधा-माधव के चरणों में समर्पित हो गया है। आत्म समर्पण की जिस भावना को लेकर ये प्रेम साधना में प्रवृत्त हुए थे, वह अन्त तक बनी रही है।

१०. काव्य-शिल्प

मार्मिक भाव-विधान की भाँति ही व्यंजना-कौशल की दृष्टि से भी घनानन्द की कुछ निजी विशेषताएँ हैं। इन्हें अच्छी तरह समझे बिना उनकी भाव-योजना के वैशिष्ट्य का उद्‌घाटन पूर्ण नहीं हो सकता। कथ्य को पाठक तक सही ढंग से सुगमता-पूर्वक पहुँचाने का एकमात्र साधन काव्य-शिल्प ही है। इसलिए काव्य में इसके महत्व को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है। रीतिकाल—जिसमें घनानन्द का कवि पल्लवित-पुष्पित हुआ था—शिल्प प्रधान युग था। फलस्वरूप उसे कला काल, अलंकृत काल आदि नामों से भी अभिहित किया गया है। रीतिकाल अपने आप में विषयगत या कलागत रूढ़ियों की प्रधानता का संकेतक है, जिसमें रीति या प्रणाली को विशेष महत्व दिया गया है। घनानन्द में शिल्प के प्रति कोई वैसा आग्रह नहीं दिखाई देता, जैसा कि अन्यान्य रीतिबद्ध कवियों में हम देखते हैं। फिर भी ये काव्य के कला पक्ष के प्रति पर्याप्त जागरूक दिखाई देते हैं। इन्होंने भी सर्वत्र प्रायः अलंकृत शैली का सहारा लिया है। लेकिन विषय और शिल्प के समुचित सामंजस्य को देखते हुए हम इन्हें कलावादी नहीं कह सकते। पाण्डित्य या चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति इनमें कहीं नहीं मिलती। इसे ठीक से समझने के लिए घनानन्द की भाषा-शैली के कुछ विशिष्ट पहलुओं पर विचार कर लेना आवश्यक है।

भाषा

भाषा भावों और विचारों की वाहिका होती है, अतः वह 'जो भी हो'—यह तो ठीक है, किन्तु 'जैसी भी हो'—इसे उचित नहीं माना जा सकता (उक्ति विशेषो कब्बो भाषा जाहो साहो) इस उक्ति के आधार पर रीतिकाल के प्रमुख आचार्य कवि भिखारी दास ने तुलसी और गंग को कवि-शिरोमणि के रूप में स्वीकार किया था। उनकी एतद् विषयक मान्यता है :

तुलसी गंग दुवौ भए सुकबिन के सरदार।
जिनकी कविता में मिलै भाषा विविध प्रकार॥

भिखारीदास ने तत्कालीन भाषा प्रयोग की प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर ही ऐसी मान्यता निर्धारित की थी। समूचे रीतिकाल में ब्रजभाषा को प्रमुखता देते हुए भी उसके साथ विभिन्न बोलियों में प्रचलित शब्दों का खुला मिश्रण किया

गया। यह प्रवृत्ति काव्य-भाषा के लिए बहुत हितकर नहीं सिद्ध हुई। रीतिकालीन ब्रजभाषा साहित्य में जहाँ छंद, अलंकार, कवि-वर्णन-परिपाटी आदि पर इतने विस्तार से विचार किया गया, वहाँ भाषा के सम्बन्ध में एक भी ठीक-ठिकाने का ग्रंथ नहीं लिखा गया। इससे भाषा-प्रयोग के सम्बन्ध में एक प्रकार की अराजकता दिखाई देती है। घनानन्द ने इस अराजकता से अपने को बचाया है। इनकी 'सुजान हित' विशुद्ध ब्रजभाषा में लिखी गई रचना है। 'इश्कबेलि' तथा कुछ पदों में जहाँ कवि ने अरबी-फारसी और पंजाबी भाषा का प्रयोग किया है, वहाँ ब्रज-भाषा को उसमें जबरदस्ती नहीं घुसेड़ा है। यह प्रवृत्ति उनकी काव्य-भाषा-सम्बन्धी नीति का संकेत करती है।

काव्य की भाषा को व्याकरण-च्युति, शैथिल्य, अर्थ को व्यक्त करने में अक्षम शब्दावली, दुरूहता आदि के दोषों से तो मुक्त होना ही चाहिए। कथ्य को प्रेषणीय बनाने के लिए उसका व्याकरणानुमोदित होना, शब्दावली का सुविचारित, सुव्यवस्थित और सटीक होना; भावाभिव्यक्ति में सहायता पहुँचाने वाली शब्द शक्तियों, लोकोक्ति-मुहावरों आदि से युक्त होना भी आवश्यक है। इन सबकी समुचित योजना से कवि अपनी अभिव्यक्ति को पैनी बनाता है। घनानन्द की भाषा पर इन सभी दृष्टियों से विचार करके ही हम इनकी एतद्-विषयक विशेषताओं को समझ सकते हैं।

(क) **व्याकरण की दृष्टि से**—घनानन्द के प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने इन्हें 'ब्रजभाषा प्रबीन' और 'भाषा प्रबीन' दोनों बताया है। इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि ये ब्रजभाषा के प्रयोग में निपुण होने के साथ ही भाषा की सामान्य गतिविधियों के भी समर्थ पारखी थे। कुछ आलोचकों ने 'भाषा प्रबीन' का अभि-प्राय बहुभाषा प्रयोग माना है। घनानन्द की भक्ति-विषयक रचनाओं में अरबी, फारसी, पंजाबी, अवधी आदि भाषाओं का प्रचुर प्रयोग देखकर ही ऐसा तात्पर्य निकाला गया है। लेकिन हम पहले ही इस तथ्य को देख चुके हैं कि जहाँ कवि ने अरबी, फारसी या पंजाबी का सहारा लिया है, वहाँ भाषा का स्वरूप अरबी, फ़ारसी या पंजाबी के ही अनुकूल रखा है। उसमें ब्रजभाषा की अनावश्यक घुस-पैठ नहीं होने दी है। इसी तरह ब्रजभाषा के साथ भी उसने दूसरी भाषाओं के शब्दों का मिश्रण नहीं होने दिया है। घनानन्द की कीर्ति के प्रमुख स्तम्भ 'सुजान-हित' में विशुद्ध ब्रजभाषा का ही प्रयोग हुआ है। अतः उनकी 'ब्रजभाषा प्रबीणता' का विश्लेषण इस रचना के आधार पर ही करना उचित होगा।

घनानन्द की भाषा सम्बन्धी विशेषताओं को समझने के लिए सर्वप्रथम ब्रज-भाषा के स्वरूप पर विचार करना आवश्यक है। इन्होंने इसके शुद्ध और साहित्यिक स्वरूप की रक्षा पर पूर्ण ध्यान रखा है। हमने इस तथ्य को पहले ही देख लिया है कि रीतिकाल में काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत अलंकार, पिंगल आदि के

नियमों की तो खूब चर्चा हुई, लेकिन भाषा की शुद्धता और उसके व्याकरण की ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया गया। आधुनिक युग में बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ने जब साहित्यिक ब्रजभाषा का व्याकरण लिखने का निश्चय किया तो रीतिकाल के केवल दो ही कवि मिले, जिन्हें प्रामाणिक आधार बनाया जा सकता था। इनमें एक घनानन्द और दूसरे बिहारी थे।

रीतिकाल में ब्रजभाषा के साथ अवधी का मिश्रण सबसे अधिक हुआ है। शब्द रूपों की दृष्टि से अवधी की प्रकृति अकारान्त और लघ्वन्त है, जबकि ब्रज-भाषा की प्रकृति ओकारान्त दीर्घान्त है। अवधी में कर्तरि प्रयोग होता है, जैसे 'हम कहे', 'वे पढ़े', 'तुम सुने' आदि। इसके विपरीत ब्रजभाषा में प्रायः कर्मणि प्रयोग होता है और खड़ी बोली की तरह कर्ताकारक में करणकारक का चिह्न 'ने' बहुत से स्थानों पर लगता है, जैसे 'विन्ने कही', 'उन्ने सुनी' आदि। इस प्रकार की दो विरोधी प्रकृति की भाषा के शब्दों के मिश्रण से अर्थग्रहण में बाधा उत्पन्न होती है। काव्य का अध्ययन करते समय हम भाषा के एक निश्चित स्वरूप को ध्यान में रखते हैं। अतः बीच-बीच में अन्य भाषा के आने वाले शब्द और उनके प्रयोग खटकते हैं। इस दृष्टि से विचार किया जाए तो हम देखेंगे कि घनानन्द ने ब्रजभाषा के व्याकरण और शब्द-निर्माण की उसकी प्रकृति का सर्वत्र ध्यान रखा है। इनके कवित्त-सवैयों में अवधी के शब्द कठिनाई से मिलेंगे। यदि अन्य बोलियों के कुछ शब्द कहीं आए भी हैं तो उन्हें कवि ने बड़े ही स्वाभाविक ढंग से ब्रजभाषा के व्याकरण में निबद्ध कर दिया है। ब्रजभाषा की शुद्धता और व्या-करण-व्यवस्था की दृष्टि से केवल बिहारी ही इनकी समकक्षता में रखे जा सकते हैं। क्रिया, कारक आदि का रूप विधान, तद्भव रूपों का प्रयोग आदि घनानन्द ने ब्रजभाषा के नियमानुसार ही किया है। अतः इन्हें 'ब्रजभाषा प्रवीन' कहना सर्वथा संगत है।

(ख) शब्दावली की दृष्टि से—बिहारी के साथ ही रीतिकाल के अधिकांश कवियों में हमें अरबी, फारसी, अवधी, बुन्देलखण्डी, बैसवाड़ी, भोजपुरी, राज-स्थानी आदि के पर्याप्त शब्द मिलते हैं। लेकिन अपनी ब्रजभाषा की रचनाओं में घनानन्द ने इनका समावेश नहीं के बराबर किया है। केवल भाषा की शुद्धि ही, नहीं वरन् शब्द-चयन और शब्द-निर्माण की दृष्टि से भी घनानन्द ने अपनी विशिष्टता का परिचय दिया है। इसे एक उदाहरण द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता है :

'कित को **ढरि** गौ वह **ढार** अहो जिहि मो तन आँखिन **ढोरत** हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू मरसानि सो आनि **निहोरत** हे।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ तब यौं सब भाँतिन **भोरत** हे।
मन माँहि जो तोरन ही, तौ कह्यौ बिसवासी सनेह क्यौं जोरत हे ॥

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृ० ८८/२७२

यहाँ 'ढरिगौ', 'ढार', 'ढोरत', 'अरसानि', 'सरसानि', 'निहोरत', 'भोरत', आदि शब्द कवि की शब्द-निर्माण-शक्ति के परिचायक हैं। 'ढोर' शब्द ढाल या ढलान के अर्थ में प्रयुक्त होता है, लेकिन यहाँ उसका प्रयोग कृपा या द्रवीभूत होने के अर्थ में हुआ है। अतः 'ढरिगौ' ढल गया के स्थान पर समाप्त हो जाना के अर्थ में आया है और 'ढोरत' ढुलकाने या लुढ़काने के स्थान पर अनुकूल होने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यही स्थिति 'अरसानि', 'सरसानि', 'निहोरत', 'भोरत' आदि शब्दों की भी है। कवि ने इन्हें नवीन अर्थ प्रदान किए हैं। घनानन्द की इसी विशेषता को लक्ष्य कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'भाषा की पूर्व अर्जित शक्ति से ही काम न चलाकर इन्होंने अपनी ओर से नयी शक्ति प्रदान की है।...भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ।' कवि की शब्द-प्रयोग और शब्द-निर्माण की इस विशेषता को हम आगे लाक्षणिकता के प्रसंग में विशेष रूप से देखेंगे। यहाँ इतना जान लेना पर्याप्त है कि व्याकरण और शब्दावली—दोनों ही दृष्टियों से घनानन्द की भाषा अन्य सभी ब्रजभाषा कवियों की अपेक्षा अधिक शुद्ध और व्यंजक है।

(ग) शब्द-शक्तियों की दृष्टि से—व्याकरणिक शुद्धता, भावानुकूल एवं प्रसंगानुकूल शब्दावली के चयन के साथ ही भाषा में निहित शब्द शक्तियों का ज्ञान भी कवि के लिए आवश्यक है। मेरे विचार से ब्रजनाथ द्वारा घनानन्द को 'भाषा प्रवीन' कहना, भाषा की अन्यान्य गतिविधियों और उसकी शब्द-शक्ति से पूर्ण परिचय का संकेतक है। शब्द जब अपने सामान्य अर्थ-बोध से भावाभिव्यक्ति में असमर्थ हो जाते हैं, तब कवि के लिए शब्द-साधना आवश्यक हो जाती है। भाषा की शक्ति सम्पन्नता पर विचार करते हुए भारतीय साहित्य शास्त्र में शब्द की तीन शक्तियों—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शक्ति पर बड़े विस्तार से विचार किया गया है। वाच्यार्थ का बोध करवाने वाली शक्ति अभिधा होती है। वाच्यार्थ के साथ या उसे छोड़कर लक्ष्यार्थ का बोध कराने वाली शक्ति को लक्षणा कहते हैं; अभिधा और लक्षणा शब्द शक्तियाँ जब जवाब दे जाती हैं, तब कवि व्यंजना शक्ति का सहारा लेता है।

लक्षणा और व्यंजना के क्षेत्र में मध्ययुग के कवियों ने कम ही प्रवेश किया है। घनानन्द उस युग में अकेले कवि हैं, जिन्होंने इन शक्तियों का पूरा उपयोग किया है। इनकी इस प्रवृत्ति को लक्ष्य कर ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'भाषा के लक्षक और व्यंजक रूप की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी। लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानन्द ही ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई है।' यहाँ लक्षणा और व्यंजना की तकनीकी बारीकियों और पारिभाषिक सीमाओं की ओर जाने की अपेक्षा कवि की

लाक्षणिक प्रयोग और लाक्षणिक मूर्तिमत्ता सम्बन्धी विशेषताओं पर ही विचार करना हमारे लिए अधिक उपयोगी होगा।

लाक्षणिकता घनानन्द की भाषा की प्रमुख विशेषता है। इसके द्वारा कवि ने एक ओर अनिर्वचनीय भाव-स्थितियों और मनोदशाओं की समुचित अभिव्यक्ति की है, तो दूसरी ओर अमूर्त भावों को मूर्त रूप देकर उन्हें संवेदनीय बनाया है। कुछ उदाहरणों द्वारा इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है :

'**गतिनि** तिहारी देखि **थकनि मैं चली जाति,**
थिर चर दसा कैसी **ढकी उघरति** है।
कल न परति कहूँ कल सो परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति हैं।
हाय यह पीर प्यारे ! कौन सुनै, कासों कहौं,
सहौं घनआनंद क्यौं अन्दर अरति है।
भूलनि **चिन्हारि बोऊ हैं न हो हमारे तातें,**
बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है।

—घनआनन्द ग्रंथावली, पृष्ठ १०४/३२६

प्रिय की अतिशय निष्ठुरता को देखकर विषम प्रेम की पीड़ाग्रस्त विरहिणी की आन्तरिक वेदना की सांकेतिक अभिव्यक्ति इस कवित्त में हुई है। अनिर्वचनीयता की अभिव्यक्ति में वाणी वक्रता की किस सीमा तक जा सकती है—इसका अद्भुत प्रमाण इस कवित्त में मिलता है। यह सारी वक्रता विलक्षण लाक्षणिक प्रयोगों के माध्यम से आई है। 'गति' को देखकर थकना अर्थात् प्रिय की उपेक्षा की आदत को देखकर विथकित हो जाना, 'थकने' में भी चलते जाना अर्थात् दुर्दशा में भी जीवन काटते रहना, 'अचल और चल' दशा का ढके हुए उघरना अर्थात् अस्पष्ट बने रहना, 'परनि' का न जान पड़ना अर्थात् पड़ी हुई विपत्ति का पता न लगना, 'भूलनि और चन्हारि'—दोनों का साथ न होना अर्थात् स्मरण और विस्मरण की भावना से रहित, चेतना शून्य हो जाना, 'बिसरनि' का ले बिसरना, अर्थात् विस्मरण द्वारा आत्म-विस्मृति के गर्त से डाल दिए जाना आदि सभी प्रयोग लक्ष्यार्थ के संकेतक हैं। लेकिन यहाँ इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उक्त प्रयोग लक्षणा या व्यंजना के पारिभाषिक दायरे में आबद्ध नहीं हैं। लक्षणा में वाच्यार्थ वाधित हो सकता है और लक्ष्यार्थ के साथ भी रह सकता है। यहाँ सम्पूर्ण चमत्कार प्रायः अभिधामूलक ही है और अभिप्रेत अर्थ की सिद्धि भी बहुत कुछ अभिधा-व्यापार से ही होती है। वैसे अभिधा को अधम काव्य माना गया है लेकिन कुछ काव्य शास्त्रियों ने लक्षणा को हेय और अभिधा को श्रेष्ठ काव्य माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तो काव्य को अभिधा-व्यापार ही मानते

है। इस दृष्टि से विचार किया जाए तो घनानन्द के ये प्रयोग शब्द शक्तियों के शास्त्रीय दायरे का अतिक्रमण कर एक ओर इनकी उन्मुक्त दृष्टि का परिचय देते हैं और दूसरी ओर एक अभिनव व्यंजना-पद्धति का भी संकेत करते हैं। घनानन्द के सम्बन्ध में इस तथ्य को लक्ष्य कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है : 'लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग-वैचित्र्य की जो छटा इनमें दिखाई पड़ी, खेद है कि वह फिर पौने दो सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिक काल के उत्तरार्द्ध में अर्थात् वर्तमान काल की नूतन का व्यवधारा (छायावाद) में ही, अभिव्यंजनावाद के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिये प्रकट हुई।'—(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२२-२३) इस तथ्य को कुछ अन्य उदाहरणों के माध्यम से अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है :

१. 'रोकी रहै न दहै घनआनंद, **बावरी रीझ के हाथन हारियै**।'

२. 'बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै, नितही **आँखियाँ उघरी बरसैं**।'

३. '**उजरनि बसी** है हमारी आँखियानि देखौ, सुबस सुदेस जहाँ रावरे बसत हौ।'

४. '**अकुलनि के पानि पर्‌यौ** दिन राति।'

५. 'पियराई छाई तन **सियराई लौं** दहौं।'

६. ह्वै हैं **सोऊ घरी भाग उघरी** अनन्दघन,
सुरस बरस लाल **देखिहौ हरी हमैं**।'

उक्त उदाहरणों में लाक्षणिकता और प्रयोग-वैचित्र्य चमत्कार-विधायन की अपेक्षा भाव को तीव्र बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। **प्रथम** उदाहरण में व्यक्त भाव है—'रीझ पर किसी का वश नहीं।' लेकिन इस कथन में 'रीझ' की वह तीव्रता नहीं, जो 'बावरी रीझ के हाथों हारने में है।' 'रीझ' आसक्ति के अर्थ में भाववाचक संज्ञा है, लेकिन कवि ने यहाँ उसे व्यक्ति वाचक संज्ञा का रूप देकर उसका सम्मूर्तन किया है। **दूसरे** उदाहरण में 'उघरी बरसैं' के स्थान पर खुलकर बरसैं' से भी काम चलाया जा सकता था। किन्तु 'घिरि कै बरसैं' के सन्दर्भ में 'उघरी बरसैं' से आँखों की जो व्याकुलता प्रत्यक्ष हुई है, वह 'खुलकर बरसैं' से संभव नहीं थी। यहाँ बादल और आँखों में विरोध दिखा कर चमत्कार भी उत्पन्न किया गया है, लेकिन यह चमत्कार मूसलाधार वृष्टि को मूर्त भी करता है। इस प्रकार 'खुल कर बरसना' मुहावरे को यहाँ नया संस्कार प्रदान किया गया है। **तीसरे** उदाहरण में 'उजरनि बसी है' के स्थान पर 'हमारे नेत्र उजड़ गए हैं'—'उन्हें चारों ओर कुछ नहीं दिखाई देता' आदि प्रयोग स्थिति की गंभीरता और तीव्रता को नहीं व्यक्त कर पाते। यहाँ कवि ने 'उजरनि' शब्द को कर्त्ता रूप में प्रमुखता देकर 'उजाड़पन' को सम्मूर्तित किया है। यही बात **चौथे** उदाहरण में भी मिलेगी। 'अकुलानि के पानि पर्‌यौ' में जो तीव्रता आई है, वह 'प्राण अत्य-

धिक व्याकुल हो गए हैं' में कभी नहीं आ पाती। व्याकुलता भाववाचक संज्ञा है, लेकिन इसे बहुवचन में प्रयुक्त कर जातिवाचक संज्ञा का रूप दिया गया है। इसी प्रकार 'रीझ' से रीझनि, लाज से लाजनि, व्यथा से व्यथानि, सुन्दरता से सुन्दरतानि आदि प्रयोगों द्वारा कवि ने अधिकांश स्थलों पर सूक्ष्म भावों को सघन करने का सफल प्रयास किया है। पाँचवें उदाहरण में 'सियराई लौं दहीं' विरोधमूलक विलक्षण प्रयोग है, जो विरहिणी की विषम व्यथा को संकेतित करता है। इस प्रकार के लाक्षणिक प्रयोग प्रसाद आदि छायावादी कवियों में ही देखने को मिलते हैं :

'शीतल ज्वाला जलती है, ईधन होता दृग-जल का।
यह व्यर्थ स्वास चल-चलकर, करती है काम अनल का ।।

इस प्रकार के अनेक प्रयोग घनानन्द ने भी किए हैं। छठवें उदाहरण में 'खुले भाग्य वाली घड़ी' को विशेषण विपर्यय की संज्ञा दी जा सकती है। वस्तुत: घड़ी (मुहूर्त) खुले भाग्य वाली नहीं होती, वरन् आदमी खुले भाग्य वाला होता है। क्योंकि उसी का भाग्य खुलता है। यहाँ शुभ मुहूर्त के लिए 'खुले भाग्य वाली घड़ी' का प्रयोग कर कवि ने अपने अपूर्व अभिव्यंजना-कौशल का परिचय दिया है। 'देखिहौं हरी' के संदर्भ में 'खुले भाग्यवाली खड़ी' के प्रयोग को एक विशेष सार्थकता प्राप्त हुई है। घनानन्द का एक भी कवित्त-सवैया ऐसा कठिनाई से मिलेगा, जिसमें लाक्षणिक मूर्तिमत्ता या प्रयोग-वैचित्र्य का सहारा न लिया गया हो।

(घ) मुहावरे और लोकोक्तियाँ––काव्य-भाषा जब जीवन की भाषा या सामान्य बोल-चाल की भाषा से पूरी तरह अलग हो जाती है, तब चाहे उसे जितना भी अलंकृत किया जाए, उसमें जीवन का सहज स्पन्दन नहीं आ पाता। घनानन्द की भाषा भी यद्यपि पूर्णतः काव्यात्मक और अलंकृत है, फिर भी मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा कवि ने उसे जीवन के निकट लाने का सफल प्रयास किया है।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ जनजीवन में चिरकाल से चलते आ रहे भावपूर्ण एवं चमत्कार पूर्ण प्रयोग होते हैं। इनमें जीवनगत अनुभवों को अत्यन्त संक्षेप में व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता होती है। काव्य में स्थान प्राप्त कर ये जहाँ एक ओर उसमें स्वाभाविकता और सजीवता का संचार करते हैं, वहीं दूसरी ओर भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता में अपूर्व वृद्धि करते हैं। मुहावरों का निर्माण भी लक्षणा के सहारे होता है। किन्तु लोक समाज में बार-बार प्रयुक्त होने के कारण वे एक निश्चित अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं। लोकोक्तियाँ पूर्ण वाक्य या कथन होती हैं, जो अपने अन्दर एक पूरा अनुभव-जगत लिये रहती हैं। भाषा के अन्दर इनका प्रयोग वाक्य से अलग उदाहरण या दृष्टान्त के रूप में किया जाता है। इनके स्वरूप में

किसी भी प्रकार का परिवर्तन किए बिना ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत किया जाता है। अतः बिना किसी परिवर्तन के काव्य में इन्हें छन्दबद्ध करना कठिन होता है। वाक्य या छन्द की आवश्यकता के अनुसार मुहावरों के स्वरूप को आसानी से परिवर्तित किया जा सकता है। अतः इनका काव्य में प्रयोग आसान होता है। यद्यपि घनानन्द का झुकाव लोकोक्तियों की अपेक्षा मुहावरों की ओर अधिक है, फिर भी इन्होंने कुछ लोकोक्तियों का अत्यन्त सार्थक प्रयोग अपने काव्य में किया है। कुछ उदाहरणों द्वारा इसे आसानी से समझा जा सकता है :

१. 'रैनि दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै, **भाग**
आपने ही ऐसे दोष काहि धौं लगाइयै।'
२. सुनी है कै नाहीं यह प्रगट कहावति जू
काहू कलपाइहै सु कैसें कल पाय है।'

सन्दर्भ साम्य और दृष्टान्त के रूप में प्रयुक्त होने के कारण लोकोक्तियाँ सामान्य कथन में घुलमिल जाती हैं। साम्य की पूर्ण सिद्धि हो जाने पर तो ये अलंकार की कोटि में आ जाती हैं। कुछ लोकोक्तियों की छाया का उपयोग भी घनानन्द ने अपने काव्य में किए हैं :

'हित कै हितूनि कहो काहू पाई पति रे।'
'मान मेरे जियरा बनी को कैसो मोल हैं।'

लोकोक्तियों की अपेक्षा मुहावरों का उपयोग काव्य में अधिक आसानी से हो सकता है। अपनी विशेष लाक्षणिकता के कारण इनसे भाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता में अपूर्व वृद्धि होती है। घनानन्द के बिरले ही कबित्त-सवैये ऐसे मिलेंगे, जिनमें किसी मुहावरे का प्रयोग न हुआ हो। कुछ उदाहरणों द्वारा कवि के एतद्-विषयक वैशिष्ट्य का उद्घाटन आसानी से हो जाएगा :

'पहिले अपनाय सुजान सनेह सों, क्यों फिर **तेह कै तोरियै जू।**
निरधार आधार दै धार मझार, दई! **गहि बाँह न बोरियै जू।**
घनआनन्द आपने चातिक को, **गुन बाँधि लै मोह न छोरियै जू।**
रस प्याय कै ज्याय, बढ़ाय कै आस, **बिसास मैं यों बिषघोरियै जू॥'**

इसमें 'गहि बाँह' (बाँह थामना) सहारा देने के अर्थ में एक मुहावरा है, किन्तु 'गहि बाँह न बोरियै' (बाँह थाम कर डुबाना) सहारा देकर असमय हाथ खींच लेना, एक अलग मुहावरा बन जाता है। ये दोनों ही मुहावरे 'निरधार आधार दै धार मझार' के पूरे संदर्भ में इस तरह रखे गए हैं कि इनकी अभिव्यक्ति-क्षमता में और अधिक वृद्धि हो जाती है। किसी निराधार को सहारा देकर मध्यधारा में

ले जाना और फिर वहाँ बाँह पकड़कर (बलपूर्वक) डुबा देना अनुभयनिष्ठ प्रेम की मूल प्रकृति का उद्घाटन करता है। यही बात 'बिसवास में यौं विष घोरियै' (विश्वास में विष घोलना) अर्थात् विश्वासघात करना में भी है। रस (आनन्द) पिलाकर जिलाने और आशा बढ़ाने के संदर्भ में यह मुहावरा और अधिक व्यंजक बन गया है। इस सम्बन्ध में दूसरा उदाहरण है :

'घनआनन्द जान न कान करै, इत के हित की कित कोऊ कहै।
उत ऊतर पायँ लगी मेहदी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै॥

यहाँ कान करना (ध्यान देना), पाँव में मेहंदी लगना (चलने में असमर्थ होना), हाथ रहना (वश में रहना) आदि मुहावरों का बड़ा ही स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। घनानन्द के मुहावरा प्रयोग की यह मुख्य विशेषता है कि वे काव्य-भाषा में पूरी तरह से रल-मिल गए हैं। उन्हें अलग करके वहाँ पहचान पाना कठिन हो गया है। वस्तुतः ये मुहावरे कवि की लाक्षणिकता की प्रवृत्ति के अभिन्न अंग बन गए हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि घनानन्द की भाषा व्याकरण-सम्मत; भावानुकूल शब्द-योजना से पूर्ण; शब्दशक्तियों, लोकोक्ति-मुहावरों और लाक्षणिकता से युक्त अत्यन्त प्राणवान साहित्यिक ब्रजभाषा है। आवश्यकतानुसार जहाँ एक ओर यह लाक्षणिक प्रयोगों और प्रयोगवैचित्र्य का सहारा लेकर वक्र पथगामिनी बनी है, वहीं दूसरी ओर मानसिक द्रवण के अत्यन्त मार्मिक क्षणों में कोमल-कांत पदावली से संयुक्त होकर अत्यन्त सीधे-सहज मार्ग पर भी प्रवाहित हुई है। सरल एवं प्रवाहयुक्त भाषा का एक उदाहरण है :

घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, जिहि भाँतिन हौं दुख सूल सहौं।
नहि आवनि औधि न रावरी आस, इते पर एक सी बाट चहौं।
यह देखि अकारन मेरी दसा, कोउ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं।
जिय नेकु बिचारि कै देहु बताय, हहा ! प्रिय दूरि तें पायँ गहौं॥

शिल्प सम्बन्धी कुछ निजी विशेषताएँ

हमने इस तथ्य को पहले ही देख लिया है कि घनानन्द की काव्यभाषा भावाभिव्यक्ति में इतनी समर्थ है कि उन्हें अप्रस्तुत विधान का बहुत कम सहारा लेना पड़ा है। वैसे तो गिनाने के लिए इनकी रचनाओं में काव्यशास्त्र के अन्तर्गत परिगणित सभी अलंकारों को ढूँढ़ा जा सकता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि इन्होंने सादृश्य पर आधारित साम्यमूलक अप्रस्तुत विधान का बहुत ही कम सहारा लिया है। हाँ, एकतरफा प्रेम की विषम स्थिति को चित्रित करने के लिए कवि ने वैषम्यमूलक अलंकारों—विशेषकर विरोधाभास का पर्याप्त सहारा लिया है। विरोधाभास को

इनकी निजी विशेषता माना जा सकता है। घनानन्द के काव्य में विरोध की इस प्रवृत्ति को लक्ष्य करके आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है : 'विरोधाभास के अधिक प्रयोग से घनानन्द की सारी रचना भरी पड़ी है। साहसपूर्वक कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक में कहीं भी यह प्रवृत्ति न दिखाई दे, उसे बेखटके घनानन्द की कृति से पृथक किया जा सकता है और जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है।' वस्तुतः इस विश्वास के आधार पर ही मिश्र जी ने घनानन्द ग्रंथावली का संपादन किया है। कवित्त-सवैयों से लेकर पदावली और अन्यान्य भक्ति-विषयक उनकी रचनाओं में हम समान रूप से इस तथ्य को आसानी से देख सकते हैं।

यहाँ यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि घनानन्द की रचनाओं में लक्षणबद्ध विरोधाभास मात्र न होकर अधिकांशतः सार्थक और तात्विक विरोध की स्थिति सामने आती है। इसके मूल में उनके जीवन का एकतरफा और विषम प्रेम है। वहाँ प्रेमी और प्रिय के मध्य एक तात्विक और वास्तविक विरोध है। इसीलिए काव्यगत विरोध भी विरोध का आभास मात्र न होकर प्रायः तात्विक विरोध के रूप में ही आया है। इसे कुछ उदाहरणों के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है :

'हाय सनेही ! सनेह सों रूखें, रुखाई सों ह्वै चिकने अति मोहौ।
आपुन पौ अरु आपहु तें करि हाते हतौ घनआनँद को हौ।'

२. 'कौन घरी बिछुरे हौ सुजान जु एक घरी मन ते न बिछोहौ।
मोह की बात तिहारी असूझ, पै मों हिय कौ तो अमोहियौ मोहौ॥'

पहले उदाहरण में 'सनेह सों रूखे' होना (स्नेह=प्रेम, तेल; रूखे=रहित, रूक्ष), रुखाई=बेरुखी, रूक्षता; चिकने=पूर्ण, स्निग्ध; तथा अपनेपन और अपने से दूर करके मारने में विरोध है। लेकिन अधिकांशतः श्लेषमूलक होने के कारण यहाँ विरोध का आभास मात्र न होकर सर्वत्र तात्विक विरोध दिखाई देता है। दूसरे उदाहरण में 'बिछुड़' कर भी एक क्षण के लिए मन से न 'बिछुड़ना' और 'अमोही होकर भी मोहना' में तात्विक विरोध है। वस्तुतः इस प्रकार के तात्विक विरोध द्वारा कवि ने प्रेमी और प्रिय की विरोधी वृत्तियों को स्वर दिया है, जो वैषम्य मूलक होते हुए भी प्रेमी पक्ष से एकनिष्ठता की अनिवार्यता को संकेतित करता है। इसलिए इसे विरोधाभास अलंकार न मान कर विरोध-वैचित्र्य नाम देना अधिक संगत है। इसके लिए घनानन्द ने कहीं लाक्षणिकता की सहायता ली है तो कहीं उक्ति-वैचित्र्य और प्रयोग-वैचित्र्य की। प्रयोग-वैचित्र्य के लिए यहाँ कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं :

'दुरि आप नये हू **इकौसें** मिलौ घनआनँद यौं **अनखानि छिजौं।**
उर डीठि के नीठि न देखि सकौं सु अनोखियै रीझि पै रीझि-खिजौं॥

'इकौसें' (अकेले), 'अनखानि छिजौं' (झुँझलाहट में क्षीण होना) 'रीझि पै रीझि-खिजौं' (रीझ पर रीझना-खीझना) आदि प्रयोग मात्र वैचित्र्य-प्रदर्शन के लिए न होकर प्रेमी की अनिर्वचनीय स्थिति को प्रकट करते हैं। विलक्षण प्रयोग की दृष्टि से कुछ अन्य उदाहरण भी लिये जा सकते हैं :

१. 'अरसानि गही उहि बानि कछू, सरसानि सों आनि निहोरत है।'
२. '**मग हेरत दीठि हिराय गयी**, जब ते तुम आवनि औधि वदी।
बरसौं कितहू घनआनन्द प्यारे, पै **बाढ़ति है इत सोच-नदी।**
हियरा अति औटि उदेग की आँचनि **च्वावत आँसुनि मैन-मदी।**
कब आयहौ औसर जानि सुजान **बहीर लौं बैसि तौ जाति लदी॥**

प्रथम उदाहरण में आदत (बानि) का आलस्य ग्रहण करना विलक्षण है। आलस्य आदमी करता है, आदत नहीं। लेकिन उस आदत (उहि बानि) का आलस्य करना, जो पहले आलसी नहीं थी—इससे प्रिय की जिस निष्ठुरता की व्यंजना हुई है, वह प्रिय के आलस्य ग्रहण से नहीं हो सकती थी। 'निहोरा' शब्द ब्रजभाषा में कृतज्ञता के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जिससे 'निहोरत' क्रिया का निर्माण कवि का मौलिक प्रयास है। दूसरे उदाहरण में 'दृष्टि का खो जाना' (दीठि हिराय गई) एक मुहावरा है, लेकिन 'मग हेरत' (मार्ग देखते या जोहते) के सन्दर्भ में हल्के विरोध की छाया से युक्त होने के कारण अर्थ में एक विशेष प्रकार की तीव्रता आ गई है। रास्ता देखते हुए दृष्टि का खो जाना अर्थात् देखने के प्रयास में स्वयं खो जाना, जहाँ एक ओर चमत्कार की सृष्टि करता है, वहीं दूसरी ओर विरहिणी की गंभीर स्थिति को भी संकेतित करता है। दूसरी पंक्ति में बादलों का कहीं बरसना और नदी का कहीं अन्यत्र बढ़ना में असंगति है—कारण कहीं और कार्य कहीं में असंगतिमूलक विरोध है। इसी प्रकार एक तरफ़ सोच-नदी का बढ़ना और दूसरी तरफ उद्वेग की आँच में उबलना में भी विरोध का आभास है। तीसरी पंक्ति में कामदेव द्वारा हृदय को उद्वेग की आँच में उबाल कर आँसू के रूप में मदिरा टपकाना, एक विचित्र व्यापार है, जो काम-व्यथा की ओर सूक्ष्म किन्तु प्रभावपूर्ण संकेत है। 'बहीर' (युद्ध के बाद का बचा हुआ सैनिक साज-सामान) 'लौं बैसि' (आयु) के लदने में केवल उपमा का चमत्कार न होकर विरहिणी की हृदय-द्रावक हताशा को भी वाणी मिली है। इस प्रकार यहाँ मुहावरे; लाक्षणिक प्रयोग; असंगति, रूपक, उपमादि अलंकार; विरोध-वैचित्र्य, प्रयोग-वैचित्र्य आदि एक साथ मिलकर विरहिणी की गम्भीर मनोदशा की सफल अभिव्यक्ति करते हैं। अन्तिम पंक्ति—'कब आयहौ औसर जानि सुजान, बहीर लौं बैसि तो जाति लदी'—में विरहिणी की कातर पुकार मूर्तिमान हो गई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा-शैली के सम्बन्ध में भी घनानन्द ने रीति-बद्धता की लकीर नहीं पीटी है। उनकी दृष्टि शिल्प-सम्बन्धी नई संभावनाओं की ओर भी गई है। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि 'यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ-साथ जिस रूप में चाहते थे, उस रूप में मोड़ सकते थे। इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी। ...अपनी भावनाओं के अनूठे रूप रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३२२)। कहना न होगा कि भाषा की इस शक्ति के पीछे उनके लाक्षणिक प्रयोग, विरोध-वैचित्र्य, प्रयोग-वैचित्र्य आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रेम-भावना को जिस सूक्ष्म एवं अछूते मार्ग पर घनानन्द ने विचरण कराया है, वह हिन्दी के पुराने कवियों के लिए तो अपरिचित रहा है, लेकिन आगे आने वाले कवियों को उससे प्रेरणा मिल सकती है।

११. उपसंहार

अपने युग की उपज होने के कारण घनानन्द के काव्य-जगत् का दायरा युगीन सीमाओं से परिसीमित अवश्य है, लेकिन श्रृंगार के संयोग-वियोग की परम्परागत लक्ष्मण रेखा का अतिक्रमण करने के कारण वह आज भी हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकता है। प्रेरणा का यह बिन्दु कवि का स्वानुभूत सत्य है। लेकिन स्वानुभूत सत्य तभी महत्वपूर्ण बनता है, जब अन्तःप्रेरणा बाह्य प्रभावों के साथ द्वन्द्वरत होकर आत्म-परिष्कार या आत्म-विस्तार की ओर उन्मुख होती है। इस दृष्टि से घनानन्द का द्वन्द्व त्रिकोणात्मक है। इसका एक छोर उनकी निजी जीवन की स्थिति-परिस्थिति में है, दूसरा तत्कालीन परम्परानिष्ठ रूढ़िग्रस्त दबावों में तो तीसरा छोर विदेशी कही जाने वाली फ़ारसी काव्य-परम्परा के प्रभावों में। अपनी जीवनगत स्थितियों और उसके अनुभवों की सच्ची अभिव्यक्ति के लिए तत्कालीन जीवनगत और काव्यगत रूढ़ियों का अतिक्रमण घनानन्द को आवश्यक प्रतीत हुआ। इसके लिए फारसी भावधारा और काव्य-पद्धति उन्हें अपने अनुकूल लगी। अतः इसे सीधे फारसी प्रभाव कहकर टाला नहीं जा सकता। फारसी प्रभाव कवि के लिए बाहरी प्रभाव हो सकता है, लेकिन वह अपनी जीवनगत परिस्थितियों के माध्यम से उसके अन्तर्जगत का अंग बन आन्तरिक प्रेरणा के साथ घुल-मिल गया है। कोई भी बाहरी प्रभाव जब आन्तरिक संवेदनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति करते हुए निजी व्यक्तित्व का अंग बन जाता है, तब वह बाहरी नहीं रह जाता। घनानन्द के सन्दर्भ में फ़ारसी काव्यधारा के प्रभाव की भी यही स्थिति है। कवि ने उसे आत्मसात कर नितान्त आन्तरिक बना लिया है। फलस्वरूप वह देशी परिवेश में एक अभिनव रूप ग्रहण करता है। बाह्य प्रभाव-ग्रहण की यह एक अत्यन्त जीवन्त और स्वस्थ पद्धति है, जिससे आज भी हम प्रेरणा ले सकते हैं।

सूफियों के 'प्रेम की पीर' और फारसी भावधारा में स्वीकृत प्रेम-पद्धति के प्रभाव के सन्दर्भ में यदि किंचित विस्तार से विचार करें तो घनानन्द को हम एक विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न कवि के रूप में पाएँगे। जहाँ एक ओर इस भावधारा के विषय एवं वस्तुगत तत्वों को आत्मसात कर इन्होंने आत्मानुभूति का अंग बनाया, वहीं दूसरी ओर इसके मुहावरेदार लाक्षणिक काव्य-शिल्प को ब्रजभाषा में ढालकर एक नया संस्कार प्रदान किया। इसीलिए इनके प्रेम-निरूपण और उसकी अतिशय भावमूलक अभिव्यक्ति में हमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं दिखाई देती। इसके

साथ ही घनानन्द द्वारा गृहीत भावों, उनकी अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त भाषा, शब्दावली, मुहावरों आदि पर भी फारसी प्रभाव कहीं आरोपित नहीं दिखाई देता। अतः इस प्रभाव के माध्यम से जहाँ कवि ने अपनी आन्तरिक आवश्यकता की पूर्ति की है, वहीं ब्रजभाषा की शक्ति में भी वृद्धि की है।

किसी कवि-कलाकार का वास्तविक महत्व उसके युग-परिवेश के सन्दर्भ में ही आँका जा सकता है। इस दृष्टि से बिरले ही लोग होते हैं, जो अपनी अलग पहचान बना पाते हैं। घनानन्द ऐसे ही कवि थे, जिन्होंने युगीन रूढ़िग्रस्त परिपाटी का त्याग कर अपनी एक अलग पहचान बनाई है। रीतिकालीन व्यक्तित्व-विहीन काव्य-रचना के वातावरण में अपने निजी व्यक्तित्व को काव्य-प्रेरणा का स्रोत बनाकर इन्होंने अपने साहस का परिचय दिया है। लेकिन इस साहस का मूल्य भी इन्हें चुकाना पड़ा। जीवन-क्षेत्र की भाँति ही काव्य-क्षेत्र में भी इनकी उपेक्षा हुई। सुजान वेश्या से प्रेम के कारण राजदरबार से निष्कासित होना पड़ा और काव्य-क्षेत्र में फारसी की उक्तियाँ चुराने वाला 'किसी तुरुकनी का बन्दा' तथा किसी 'तुरुक राजा' को रिझाने वाला कहकर निन्दित किया गया। यह एक वास्तविकता है कि युग की प्रमुख भावधारा के मध्य विक्षेप उत्पन्न कर अपनी नयी पहचान बनाने वाले कवि-कलाकार अपने युग द्वारा सदा से उपेक्षित होते आए है। एक ह्रासग्रस्त सामंतीय समाज में वेश्या उपभोग की सामग्री होती है। उससे प्रेम या वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना सामाजिक दृष्टि से निषिद्ध माना जाता है। घनानन्द ने इस विधि-निषेध का उल्लंघन किया। अतः वे राजकीय कोप के भाजन ही नहीं, वरन् सामाजिक उपेक्षा के भी पात्र बने। अपने युग में ब्रजनाथ और महात्मा हितवृन्दावन-दास के अतिरिक्त किसी ने भी इस कवि को महत्व नहीं दिया। जब कि 'बिहारी सतसई' की सैकड़ों टीकाएँ लिखी गई; केशव, देव, मतिराम, पद्माकर आदि की रचनाओं पर सैकड़ों भित्ति-चित्र बने। आधुनिक युग में आकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, जगन्नाथदास रत्नाकर, चन्द्रकुँवर आदि ने घनानन्द के महत्व को समझा और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ में इनके मूल्य को सही ढंग से आँका। लेकिन फिर भी साहित्येतिहास की स्वीकृत धारा में इनका स्थान-निर्धारण नहीं हो पाया। आगे चलकर इनके साथ आलम, ठाकुर, बोधा आदि कवियों को जोड़ कर रीतिमुक्त स्वच्छन्द काव्यधारा के रूप में इनको ऐतिहासिक प्रतिष्ठा मिली। वस्तुतः रीतिकाल के अन्तर्गत रीतिमुक्त काव्यधारा की अलग पहचान इस कवि के बिना संभव नहीं थी। घनानन्द का यह बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है।

घनानन्द मूलतः वेदना के कवि रहे हैं। वेदना ही उनके जीवन का वास्तविक सत्य थी, जिसे अपने काव्य में उन्होंने वाणी प्रदान की है। लेकिन वेदना एक ऐसा भाव है, जिसकी सच्ची अनुभूति स्वयं मर्माहत होने पर ही संभव है। केवल वाक्-

चातुर्य या वाणी-विलास के बल पर वेदना के महत्व को नहीं प्रकट किया जा सकता :

'मरम भिदै न जौ लौं, मरम न पावै तौ लौं,
मरमहि भेदै कैसे सुरति घँघोइवो।
प्रेम आगि जागै लागै झर घनआनन्द को,
रोइवो न आवै तौ पै गाइबा हू रोइबो॥'

'प्रेमाग्नि लगने पर ही आनन्द की झड़ी लगती है। जिसे रोना नहीं आता, उसके हर्षोल्लासपूर्ण गान भी रुदन जैसे बन जाते हैं।' इससे स्पष्ट है कि कवि विषाद में ही उत्तम काव्य की सृष्टि मानता है। लेकिन विषाद की वास्तविक अनुभूति के बिना, वह केवल अवधारणा बनकर रह जाता है। हमें रीतिबद्ध काव्य-धारा में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि वहाँ प्रेमजन्य विषाद केवल अवधारणा बन कर रह गया है। अपनी सामान्य व्यवहार की भूमि से कटकर कोई भी अव-धारणा वायवी बन जाती है और तब उसमें से जीवन के वास्तविक स्पन्दन गायब हो जाते हैं। आधुनिक युग के छायावादी काव्य में भी प्रेमजन्य विषाद का कुछ ऐसा ही स्वरूप मिलता है। इस काव्यधारा के कवियों में भी विषाद के प्रति एक ललक दिखाई देती है, जिससे प्रेरित होकर प्रसाद और पन्त ने लिखा है :

'जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति की छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई॥' —प्रसाद
'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान॥' —पन्त

लेकिन इस 'घनीभूत पीड़ा' या 'आह' का ठोस आधार हमें प्रसाद और पंत के जीवन में नहीं प्राप्त होता। फलस्वरूप हमें प्रसाद के आँसू और पंत की आह में वास्तविक वेदना या विषाद नहीं, वरन् विषाद की विलासपूर्ण कल्पना के दर्शन होते हैं। सच्ची वेदना की भावना छायावाद में है ही नहीं, जैसी कि रीतिमुक्त कवि घनानन्द, ठाकुर, बोधा या कबीर, सूर, मीरां आदि भक्त कवियों में मिल जाती है। यह सही है कि जिये जाने वाले या भोगे गए जीवन की अविकल अनुगूँज काव्य में नहीं होती। कवि कल्पना के सहारे उस भोगे गए जीवन की पुनर्रचना करता है। इस कल्पना के द्वारा जहाँ एक ओर वह दूसरों के अनुभवों को अपना बनाता है, वहीं दूसरी ओर अपने अनुभवों में दूसरों को सहभागी बनाता है। घनानन्द में भी इस प्रकार की विधायक कल्पना का संयोग है, लेकिन यह कल्पना जीवन की पुख्ता नींव पर आधारित है। इसलिए इनके काव्य में विरही जीवन की वास्तविक व्यथा मिलती है और इसीलिए वह हमें आज भी द्रवीभूत करती है। यह स्थिति

देव, मतिराम, पद्माकर आदि रीतिबद्ध कवियों में कठिनाई से मिलेगी। इन कवियों ने प्रेमजन्य व्यथा की अभिव्यक्ति में अपनी अनुभवशून्यता को वाक्जाल के माध्यम से ढँकने का प्रयास किया है। इसकी ओर संकेत करते हुए घनानन्द ने स्वयं लिखा है :

'बात के देस तें दूरि परे, जड़ता नियरे सियरे हिय दाहैं।
चित्र की आँखिन लीने बिचित्र, महारस रूप सवाद सराहैं।
नेह कथैं सठ नीर मथैं, हठ कै कठ-प्रेम को नेम निबाहैं।
क्यों घनआनंद भीजैं सुजाननि यौं अमिले मिलबो फिर चाहैं।।'

वाणी के वास्तविक मर्म से अनभिज्ञ, जड़ और अनुभूति शून्य (सियरे) ठंडे हृदय वाले इन कवियों का काव्य मन में कुढ़न पैदा करता है। इन्होंने चित्र में अंकित (झूठी) आँखों से महारस (प्रेम) के स्वाद की सराहना की है। इसलिए इनका प्रेम-कथन किसी दुष्ट द्वारा जल-मंथन की तरह निरर्थक या हठपूर्वक कठ-प्रेम के नियम के निर्वाह जैसा है। इस प्रकार के कवियों से घनानन्द ने अपने को बिल्कुल अलग बताया है। वस्तुतः अपने युग-जीवन और युगीन काव्य-धारा के प्रति इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ कवि के आन्तरिक द्वन्द्व और उसकी जीवन्तता को प्रमाणित करती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि घनानन्द का अपने युग और आज के संदर्भ में भी एक ऐतिहासिक महत्व है। यद्यपि यह महत्व साहित्येतिहास में नई दिशा का प्रवर्तक बनने की क्षमता चाहे भले ही न रखता हो, फिर भी एक सशक्त भाव-धारा अथवा काव्य-धारा की अगतिकता के विरुद्ध अपने आपको स्थापित करने के प्रयास के कारण हमारे लिए नई दिशा का संकेतक बनने की क्षमता अवश्य रखता है। वह संकेत है अपने युग की रूढ़, गलित एवं अगतिशील परम्पराओं का भजन।

□ □